स्वराज अभियान प्रकाशन

ए-119, प्रथम तल, कौशाम्बी, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201010

फोन : 09968701659 **ईमेल :** parivartanindia@gmail.com

Website : www.lokrajandolan.org

स्वराज

अरविंद केजरीवाल

Published by :
Swaraj Abhiyan Prakashan
A-119, Ist Floor, Kaushambi
Ghaziabad, Uttar Pradesh-201010
Phone : 09968701659
Email : parivartanindia@gmail.com
Website : www.lokrajandolan.org

© लेखक : अरविंद केजरीवाल
जनचेतना जगाने के लिए इस पुस्तक के किसी भी अंश का गैर व्यवसायिक उपयोग किया जा सकता है।

मूल्य : बीस रुपये
प्रथम संस्करण : दिसम्बर, 2010
आवरण : वर्ल्ड कौमिक्स
प्रकाशक : स्वराज अभियान प्रकाशन, ए-119, प्रथम तल,
कौशाम्बी, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201010
दूरभाष : 09968701659
Email : parivartanindia@gmail.com
मुद्रक : इम्प्रेशन
82, कुन्दन नगर, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-92

SWARAJ
By Arvind Kejriwal
Price : Rs. 20

स्वराज की राह देख रही
देश की आम जनता
को समर्पित

विषय सूची

यह पुस्तक क्यों? 1

जनता की एक नहीं चलती 5
सरकारी कर्मचारियों पर कोई नियंत्रण नहीं
सरकारी पैसे पर कोई नियंत्रण नहीं
बी. पी. एल. की राजनीति
सरकारी नीतियों और क़ानूनों पर कोई नियंत्रण नहीं
प्राकृतिक संसाधनों पर कोई नियंत्रण नहीं
क्या यही जनतंत्र है?

बीते समय की बात 16

वर्तमान पंचायती राज की विसंगतियां 19
भौंडसी गांव में वृक्षारोपण अभियान
कुटुम्बाकम में शहर का कूड़ा
नरेगा का मज़ाक
झाड़ू भी नहीं खरीद पाती पंचायतें
पंचायत सचिव–पंचायत का या राज्य सरकार का
'बैकवर्ड रीजन ग्रांट फंड' का किस्सा

अन्य देशों के उदाहरण 25
अमरीका – वॉलमार्ट हार गया
ब्राज़ील – गलियों में तैयार होता बजट
स्विट्ज़रलैंड – जनता के इशारे पर चलती संसद

जनता का तिलक करो 28
सरकारी कर्मचारियों पर नियंत्रण हो
सरकारी पैसों पर नियंत्रण हो
क्या ग्राम सभाओं को ताकत देने से भ्रष्टाचार बढ़ेगा?
क़ानूनों और नीतियों पर जनता की राय ली जाए
प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण हो
सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच कार्य विभाजन हो
स्वराज की व्यवस्था में निर्णय कैसे लिये जायेंगे?
भारतीय राजनीति पर इसका असर
पंचायती राज और अन्य क़ानूनों में व्यापक फेरबदल की ज़रूरत

स्वराज के स्वदेशी टापू 39
महाराष्ट्र का हिवरे बाज़ार गांव
उत्तरी केरल के एक गांव का उदाहरण
मध्य प्रदेश में नए क़ानून का करिश्मा

जब जनता निर्णय लेगी 45
शिक्षा में सुधार
स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार
नक्सलवाद से छुटकारा
नशाबंदी में सफलता
ग़रीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी का निदान

निर्मूल आशंकाएं और भ्रांतियां 49
दलितों पर अत्याचार
खाप पंचायतों का डर
ग्राम सभाओं को ताकत देने से सामाजिक कुरीतियां बढ़ेंगी या घटेंगी ?
ग्राम सभाओं में तो लोग लड़ेंगे ?
'पेसा क़ानून' का क्या हुआ?
अच्छे लोगों के सत्ता में आने से सुधार होगा?
राजनीति में बदलाव बिना सुधार असंभव
व्यक्ति निर्माण और व्यवस्था सुधार

ग्राम स्वराज के लिए क़ानून बने 58
ग्राम सभा सर्वोच्च होनी चाहिए
ग्राम-स्तर का काम ग्राम स्तर पर हो
सरकारी कर्मचारियों पर नियंत्रण
सरकारी फ़ंड पर नियंत्रण
ब्लॉक एवं ज़िला पंचायतों पर नियंत्रण
नीति निर्माण एवं विधान सभाओं पर सीधा नियंत्रण
ग्राम सभा द्वारा सूचना प्राप्त करने का अधिकार
पंचायत सचिव के ऊपर नियंत्रण
पंचायतों में भ्रष्टाचार का मामला
गांवों में शराब की लत
उद्योग एवं खनन के लिए लाइसेंस
भूमि अधिग्रहण
भूमि दस्तावेज़
प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण
एस.डी.एम. कार्यालय में भ्रष्टाचार
कर उगाही
कई गांवों को एक पंचायत में मिलाना
ब्लॉक एवं ज़िला स्तरीय पंचायतों का गठन
दस्तावेज़ों की पारदर्शिता
लोकपाल की व्यवस्था हो
राज्य सरकार के हस्तक्षेप पर रोक लगे
लाभार्थी सभाओं का गठन हो

नगर स्वराज भी ज़रूरी 74
दिल्ली के प्रयोग
केन्द्र सरकार की पहल
प्रस्तावित क़ानून के मुख्य प्रावधान

अपनी ग्राम सभा या अपनी मोहल्ला सभा से जुड़िए, बातचीत करिए 79

यह पुस्तक क्यों?

मैं पहले आयकर विभाग में काम किया करता था। 90 के दशक के अंत में आयकर विभाग ने कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सर्वे किया। सर्वे में ये कंपनियां रंगे हाथों टैक्स की चोरी करती पकड़ी गयीं, उन्होंने सीधे अपना जुर्म कबूल कर लिया और बिना कोई अपील किये सारा टैक्स जमा करा दिया। अगर ये लोग किसी और देश में होते तो अभी तक उनके वरिष्ठ अधिकारियों को जेल हो गई होती। ऐसी ही एक कंपनी पर सर्वे के दौरान उस कंपनी के विदेशी मुखिया ने आयकर टीम को धमकी दी- ''भारत एक बहुत ग़रीब देश है। हम आपके देश में आपकी मदद करने आए हैं। यदि आप लोग हमें इस तरह तंग करोगे तो हम आपका देश छोड़कर चले जाएंगे। आपको पता नहीं हम कितने ताकतवर हैं। हम चाहें तो आपकी संसद से कोई भी क़ानून पारित करा सकते हैं। हम आप लोगों का तबादला भी करा सकते हैं।'' इसके कुछ दिन बाद ही हमारी टीम के एक वरिष्ठ अफ़सर का तबादला कर दिया गया।

उस वक्त मैंने उस विदेशी की बातों को ज़्यादा महत्व नहीं दिया। मैंने सोचा कि शायद वो आयकर सर्वे से परेशान होकर बोल रहा था। लेकिन पिछले कुछ सालों की घटनाओं से मुझे धीरे-धीरे उसकी बातों में सच्चाई नज़र आने लगी है। मन में प्रश्न उठने लगे हैं- ''क्या वाकई इन विदेशियों का हमारी संसद पर नियंत्रण है?''

जैसे जुलाई 2008 में यू.पी.ए सरकार को संसद में अपना बहुमत साबित करना था। खुलेआम सांसदों की खरीद फरोख्त चल रही थी। कुछ टी.वी. चैनलों ने सांसदों को पैसे लेकर खुलेआम बिकते दिखाया। उन तस्वीरों ने इस देश की आत्मा को हिला दिया। अगर सांसद इस तरह से बिक सकते हैं तो हमारे वोट की क्या कीमत रह जाती है? दूसरे, आज उन्हें अपनी सरकार बचाने के लिए इस देश की एक पार्टी खरीद रही है। कल को उन्हें कोई और देश भी खरीद सकता है। जैसे अमरीका, पाकिस्तान इत्यादि। हो सकता है ऐसा हो भी रहा हो, किसे पता? यह सोच कर पूरे शरीर में सिहरन दौड़ पड़ी- ''क्या हम एक आज़ाद देश के नागरिक हैं? क्या हमारे देश की संसद सभी क़ानून इस देश के लोगों के हित के लिए ही बनाती है?''

अभी कुछ दिन पहले जब अखबारों में संसद में हाल ही में प्रस्तुत न्यूक्लियर सिविल लायबिलिटी बिल के बारे में पढ़ा तो सभी डर सच साबित होते नज़र आने लगे। यह बिल कहता है कि कोई विदेशी कंपनी भारत में अगर परमाणु संयंत्र लगाती है और यदि उस संयंत्र में कोई दुर्घटना हो जाती है तो उस कंपनी की ज़िम्मेदारी केवल 1500 करोड़ रुपये तक की होगी। दुनियाभर में जब भी कभी परमाणु हादसा हुआ तो हज़ारों लोगों की जान गयी और हज़ारों करोड़ का नुकसान हुआ।

भोपाल गैस त्रासदी में ही पीड़ित लोगों को अभी तक 2200 करोड़ रुपया मिला है जो कि काफी कम माना जा रहा है। ऐसे में 1500 करोड़ रुपये तो कुछ भी नहीं होता। एक परमाणु हादसा न जाने कितने भोपाल के बराबर होगा? इसी बिल में आगे लिखा है कि उस कंपनी के ख़िलाफ कोई आपराधिक मामला भी दर्ज नहीं किया जाएगा और कोई मुकदमा नहीं चलाया जाएगा। कोई पुलिस केस भी नहीं होगा। बस 1500 करोड़ रुपये लेकर उस कंपनी को छोड़ दिया जाएगा।

यह क़ानून पढ़कर ऐसा लगता है कि इस देश के लोगों की ज़िंदगियों को कौड़ियों के भाव बेचा जा रहा है। साफ-साफ ज़ाहिर है कि यह क़ानून इस देश के लोगों की ज़िंदगियों को दांव पर लगाकर विदेशी कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिए लाया जा रहा है। हमारी संसद ऐसा क्यों कर रही है? यकीनन या तो हमारे सांसदों पर किसी तरह का दबाव है या कुछ सांसद या पार्टियां विदेशी कंपनियों के हाथों बिक गयीं हैं।

भोपाल गैस त्रासदी के हाल ही के निर्णय के बाद अख़बारों में ढेरों ख़बरें छप रहीं हैं कि किस तरह भोपाल के लोगों के हत्यारे को हमारे देश के उच्च नेताओं ने भोपाल त्रासदी के कुछ दिनों के बाद ही राज्य अतिथि सा सम्मान दिया और उसे भारत से भागने में पूरी मदद की।

इन सब बातों को देखकर मन में प्रश्न खड़े होते हैं- ''क्या भारत सुरक्षित हाथों में है? क्या हम अपनी ज़िंदगी और अपना भविष्य इन कुछ नेताओं और अधिकारियों के हाथों में सुरक्षित देखते हैं?''

ऐसा नहीं है कि हमारी सरकारों पर केवल विदेशी कंपनियों या विदेशी सरकारों का ही दबाव है। पैसे के लिए नेता और अफ़सर कुछ भी कर सकते हैं। कितने ही मंत्री और अफ़सर औद्योगिक घरानों के हाथों की कठपुतली बन गए हैं। कुछ औद्योगिक घरानों का वर्चस्व बहुत ज़्यादा बढ़ गया है। अभी हाल ही में एक फोन टैपिंग मामले में खुलासा हुआ था कि मौजूदा सरकार के कुछ मंत्रालयों में कौन मंत्री बनेंगे- इसका निर्णय हमारे प्रधानमंत्री ने नहीं बल्कि कुछ औद्योगिक घरानों ने लिया था। अब तो ये खुली बात हो गई है कि कौन सा नेता या अफ़सर किस घराने के साथ है। खुलकर ये लोग साथ घूमते हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि कुछ राज्यों की सरकारें और केंद्र सरकार के कुछ मंत्रालय ये औद्योगिक घराने ही चला रहे हैं।

अभी कुछ दिन पहले ख़बर छपी थी कि रिलायंस के मुकेश अंबानी महाराष्ट्र में कोई प्राइवेट

यूनिवर्सिटी शुरू करना चाहते हैं। वो महाराष्ट्र के शिक्षा मंत्री राजेश टोपे से मिले और उनकी ये इच्छा पूरी करने के लिए राजेश टोपे ने विधान सभा में प्राइवेट यूनिवर्सिटी बिल लाना मंज़ूर कर दिया। औद्योगिक घरानों की इच्छा पूरी करने के लिए हमारी विधान सभाएं तुरंत क़ानून पारित करने को राज़ी हो जाती हैं।

हमारे देश की खदानों को कौड़ियों के भाव इन औद्योगिक घरानों को बेचा जा रहा है। जैसे लौह अयस्क (आयरन ओर) की खदानें लेने वाली कंपनियां सरकार को महज 27 रुपये प्रति टन रॉयल्टी देती हैं। उसी आयरन ओर को ये कंपनियां बाज़ार में 6000 रुपये प्रति टन के हिसाब से बेचती हैं। (खदान से लोहा निकाल कर उसकी सफाई इत्यादि करने में लगभग 300 रुपये प्रति टन का खर्च आता है।) क्या यह सीधे सीधे देश की संपत्ति की लूट नहीं है?

इसी तरह से औने पौने दामों में वनों को बेचा जा रहा है, नदियों को बेचा जा रहा है, लोगों की ज़मीनें छीन छीन कर कंपनियों को औने पौने दामों में बेची जा रही हैं। इन पार्टियों, नेताओं और अफ़सरों के हाथ में हमारे देश के प्राकृतिक संसाधन और हमारे देश की संपदा खतरे में है। जल्द ही कुछ नहीं किया गया तो ये लोग मिलकर सब कुछ बेच डालेंगे।

इन सब को देखकर भारतीय राजनीति और भारतीय जनतंत्र पर एक बहुत बड़ा सवालिया निशान लगता है। सभी पार्टियों का चरित्र एक ही है। हम किसी भी नेता या किसी भी पार्टी को वोट दें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

पिछले 60 सालों में हम हर पार्टी, हर नेता को आज़मा कर देख चुके हैं। लेकिन कोई सुधार नहीं हुआ। इससे एक चीज़ तो साफ है- केवल पार्टियां और नेता बदल देने से बात नहीं बनने वाली। हमें कुछ और करना पड़ेगा।

हम अपने संगठन ''परिवर्तन'' के ज़रिये पिछले दस सालों में विभिन्न मुद्दों पर काम करते रहे। कभी राशन व्यवस्था पर, कभी पानी के निजीकरण पर, कभी विकास कार्यों में भ्रष्टाचार को लेकर इत्यादि। आंशिक सफलता भी मिली। लेकिन जल्द ही यह आभास होने लगा कि यह सफलता क्षणिक और भ्रामक है। किसी मुद्दे पर सफलता मिलती। जब तक हम उस क्षेत्र में उस मुद्दे पर काम कर रहे होते, ऐसा लगता कि कुछ सुधार हुआ है। जैसे ही हम किसी दूसरे मुद्दे को पकड़ते, पिछला मुद्दा पहले से भी बुरे हाल में हो जाता। धीरे धीरे लगने लगा कि देश भर में कितने मुद्दों पर काम करेंगे, कहां कहां काम करेंगे। धीरे धीरे यह भी समझ में आने लगा कि इन सभी समस्याओं की जड़ राजनीति में है। क्योंकि इन सब मुद्दों पर पार्टियां और नेता भ्रष्ट और आपराधिक तत्वों के साथ हैं। और जनता का किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं है। मसलन राशन की व्यवस्था को ही लीजिए। राशन चोरी करने वालों को पार्टियों और नेताओं का पूरा-पूरा संरक्षण है। यदि कोई राशन वाला चोरी करता है तो हम खाद्य कर्मचारी या खाद्य आयुक्त या खाद्य मंत्री से शिकायत करते हैं। पर ये सब तो उस चोरी में सीधे रूप से शामिल हैं। उस

चोरी का एक बड़ा हिस्सा इन सब तक पहुंचता है। तो उन्हीं को शिकायत करके क्या हम न्याय की उम्मीद कर सकते हैं? यदि किसी जगह मीडिया का या जनता का बहुत दबाव बनता है तो दिखावे मात्र के लिए कुछ राशन वालों की दुकानें निरस्त कर दी जाती हैं। जब जनता का दबाव कम हो जाता है तो रिश्वत खाकर फिर से वो दुकानें बहाल कर दी जाती हैं।

इस पूरे तमाशे में जनता के पास कोई ताकत नहीं है। जनता केवल चोरों को शिकायत कर सकती है कि 'कृपया आप अपने ख़िलाफ कार्रवाई कीजिए' जो होने वाली बात नहीं है।

तो ये समझ में आने लगा कि सीधे जनता को क़ानूनन यह ताकत देनी होगी कि यदि राशन वाला चोरी करे तो शिकायत करने की बजाय सीधे जनता उसे दंडित कर सके। सीधे-सीधे जनता को व्यवस्था पर नियंत्रण देना होगा जिसमें जनता निर्णय ले और नेता और अफ़सर उन निर्णयों का पालन करें।

क्या ऐसा हो सकता है? क्या 120 करोड़ लोगों को क़ानूनन निर्णय लेने का अधिकार दिया जा सकता है?

वैसे तो जनतंत्र में जनता ही मालिक होती है। जनता ने ही संसद और सरकारों को जनहित के लिए निर्णय लेने का अधिकार दिया है। संसद, विधान सभाओं और सरकारों ने इन अधिकारों का जमकर दुरुपयोग किया है। उन्होंने पैसे खाकर खुलेआम और बेशर्मी से जनता को और जनहित को बेच डाला है। क्या समय आ गया है कि जनता नेताओं, अफ़सरों और पार्टियों से अपने बारे में निर्णय लेने के अधिकार वापस ले लें? क्या ऐसा हो सकता है? क्या इससे अव्यवस्था नहीं फैलेगी?

इन्हीं सब प्रश्नों के उत्तर की खोज में हम बहुत घूमे, बहुत लोगों से मिले और कुछ पढ़ा भी। जो कुछ समझ में आया, उसे इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद यदि आपके मन में कोई शंका हो तो हमसे ज़रूर संपर्क कीजिए। और यदि आप हमारी बातों से सहमत हों तो अपने तन, मन, धन से इस आंदोलन में शामिल हों। समय बहुत कम है। देश की सत्ता और देश के साधन बहुत तेज़ी से देशी-विदेशी कंपनियों और विदेशी सरकारों के हाथों में जा रहे हैं। जल्द कुछ नहीं किया गया तो बहुत देर हो चुकी होगी।

❖❖❖

जनता की एक नहीं चलती

समस्या की जड़ ये है कि हम देश की राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत पांच साल में एक बार वोट डालते हैं और फिर अगले पांच साल उन्हीं नेताओं के सामने गिड़गिड़ाते हैं जिन्हें हमने वोट डालकर चुना था। जनता का पूरी व्यवस्था पर किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं है।

सरकारी कर्मचारियों पर कोई नियंत्रण नहीं :

मान लीजिए, आपके गांव के सरकारी स्कूल में अध्यापक ठीक से नहीं पढ़ाता, अध्यापक समय पर नहीं आता या आता ही नहीं है। तो क्या आप उसका कुछ बिगाड़ सकते हैं? नहीं, हम कुछ नहीं कर सकते। शिकायत करते हैं और शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं होती।

आपके सरकारी अस्पताल में, मान लीजिए, डॉक्टर ठीक से इलाज नहीं करता, दवाईयाँ नहीं देता, समय पर नहीं आता या आता ही नहीं है। कुछ कर सकते हैं आप उसका? आप उसका कुछ नहीं कर सकते। आप शिकायत करेंगे तो शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

राशन वाला खुलेआम राशन चोरी करता है। मगर आप उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। आप शिकायत करते हैं और शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की जाती।

उसी तरह से थाने में रिर्पोट लिखवाने के लिए जाते हैं तो थानेदार रिर्पोट नहीं लिखता या आपके ख़िलाफ झूठे मुकदमे दायर कर देता है और आप उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

तो मोटे मोटे तौर पर यह निकलकर आता है कि इन सरकारी कर्मचारियों के ऊपर हमारा किसी किस्म का कोई नियंत्रण नहीं है।

हम टैक्स देते हैं, इस देश का ग़रीब से ग़रीब आदमी भी टैक्स देता है। यहां तक कि एक भिखारी भी टैक्स देता है। क्योंकि जब एक भिखारी बाज़ार से साबुन ख़रीदता है तो उसके ऊपर सेल्स टैक्स देता है, एक्साइज़ ड्यूटी देता है और न जाने कितने तरह के टैक्स देता है। ये सारा टैक्स

का पैसा हमारा पैसा है।

कहा जा रहा है कि देश में 70 प्रतिशत आबादी 20 रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन से भी कम में गुज़ारा करती है। तो यदि एक परिवार में 5 लोग होते हैं तो इस परिवार का मासिक खर्च हुआ 3000 रुपया। यदि सभी किस्म के कर जोड़ लिये जायें तो बाज़ार से कुछ भी खरीदने पर औसतन 10 प्रतिशत कर तो लगता ही है। इस हिसाब से एक गरीब परिवार भी मासिक 300 रुपया और सालाना 3600 रुपया का कर देता है। यदि आपके गांव में 1000 परिवार हैं तो वे सभी मिलकर औसतन 36 लाख रुपये सालाना कर सरकार को देते हैं। तो पिछले दस वर्षों में आपके गांव ने लगभग साढ़े तीन करोड़ रुपये का कर सरकार को दिया।

ये जितना कर सरकार हमसे इकट्ठा करती है, हम इस पैसे के मालिक हैं। और जो ये सरकारी कर्मचारी हैं, सरकारी अधिकारी हैं, नेता हैं – ये सारे हमारे नौकर हैं। क्योंकि हमारे पैसे से इनको तनख्वाह मिलती है। हमारे पैसे से इनके बंगले चलते हैं। हमारे पैसे से इनके एअरकंडीश्नर चलते हैं। इनकी लाल बत्ती की गाड़ियाँ, इनका पेट्रोल, इनके नौकर चाकर, ये सारे हमारे पैसों से चलते हैं।

और ये सारे हमें आंखें दिखाते हैं। हमारे पैसे से तनख्वाह मिलने वाले लोगों पर हमारी चलती ही नहीं है। हमारे नौकर पर ही हमारी नहीं चलती। सरकारी डॉक्टर का कुछ नहीं कर सकते, अध्यापक का कुछ नहीं कर सकते, राशन वाले का कुछ नहीं कर सकते, थानेदार का कुछ नहीं कर सकते। कभी कलक्टर के दफ्तर में गये हैं आप? उससे मिलने की कोशिश की? वो मिलता ही नहीं है। हमारा नौकर है, लेकिन हमें आंखे दिखाता है। उसका चपरासी हमें आंखे दिखाता है। तो ये सारे सरकारी कर्मचारी जिनको हमारे टैक्स के पैसे से तनख्वाह मिलती है, उनके ऊपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है।

सरकारी पैसे पर कोई नियंत्रण नहीं :

दूसरे, सरकारी फ़ंड पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। ये सारा का सारा सरकारी पैसा कैसे इस्तेमाल किया जाना चाहिए? कहां इस्तेमाल किया जाना चाहिए? हमारी क्या ज़रूरतें हैं? हमसे कोई पूछता ही नहीं है।

दिल्ली में कॉमनवैल्थ खेलों के नाम पर सरकार ने 70 हज़ार करोड़ रुपया फूंक दिया। अच्छी खासी सड़कें तोड़ तोड़ कर दोबारा बनाई गईं। अच्छे खासे फुटपाथ तोड़ तोड़ कर दोबारा बनाये गए। एक अखबार में ख़बर आयी थी कि सरकार 400 करोड़ रुपये के अच्छे खासे फुटपाथ तोड़ कर दोबारा बना रही है।

दूसरी तरफ दिल्ली नगर निगम में सफाई कर्मचारियों को तीन-तीन महीने से तनख्वाह नहीं मिली है। ठेकेदारों को पांच-पांच साल से भुगतान नहीं हुए हैं। लेकिन दिल्ली नगर निगम की छत

के ऊपर हैलीपैड बनाया जा रहा है। ताकि नेताओं के हैलीकॉप्टर वहां उतर सकें।

जब हम उसी सरकार के पास अपनी कोई समस्या लेकर जाते हैं तो सरकार कहती है कि फ़ंड नहीं है। जैसे सुंदर नगरी का उदाहरण लें। सुंदर नगरी दिल्ली की एक झुग्गी बस्ती का इलाक़ा है। वहां पर लोगों के पास पीने का पानी नहीं है। लोगों के पास सेकेंडरी स्कूल नहीं है। सीवर सिस्टम नहीं है। जब भी सरकार के पास जाते हैं सरकार कहती है पैसा नहीं है। लेकिन कुछ साल पहले सरकार ने उसी इलाके में 60 लाख रुपये के फव्वारे लगवाये। वहां के लोगों के पास पीने को पानी नहीं है। और सरकार ने फव्वारे लगवाये। इससे बड़ा मज़ाक हो सकता है कोई? बताइये? वो फव्वारे एक दिन भी नहीं चले क्योंकि वहां पर पानी ही नहीं है। जिस दिन उद्घाटन था उस दिन भी नहीं चले क्योंकि पानी ही नहीं है।

इससे ज़ाहिर है कि सरकार के पास पैसा तो है लेकिन वो पैसा ग़लत चीज़ों पर इस्तेमाल किया जा रहा है। ऐसी चीज़ों पर इस्तेमाल किया जा रहा है जिनकी हमें ज़रूरत ही नहीं है।

गांवों का उदाहरण लें। गांव के अंदर लोगों की समस्याएं कुछ और हैं लेकिन जितना पैसा वहां जाता है वह अजीबो-ग़रीब योजनाओं के तहत जाता है। दिल्ली और राज्यों की राजधानियों में बैठ कर तय होता है कि इस देश की 120 करोड़ जनता की समस्याएं क्या हैं, हमारी क्या ज़रूरतें है और सरकारी पैसा हमारे इलाके में कहां और कैसे इस्तेमाल होना चाहिए? किस्म किस्म की योजनाएं बनती हैं, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन, नरेगा, राशन इत्यादि। और ये सारी योजनाएं दिल्ली में बैठे, लखनऊ में बैठे, भोपाल में बैठे, राजधानियों में बैठे अफ़सर और नेता बनाते हैं।

हम पश्चिमी बंगाल के खिजूरी गांव में गये। वहां के सरपंच ने हमें बताया कि उनके पास 6 करोड़ रुपया आया हुआ है गांव में। लेकिन उस 6 करोड़ रुपये से वो लोग अपने गांव में 20 लाख रुपये खर्च करके स्कूल नहीं बनवा सकते क्योंकि वो सारा का सारा पैसा 'टाईड' फ़ंड है। सारा का सारा पैसा किसी न किसी योजना से बंधा हुआ है। इतने पैसे की वृद्धावस्था पेंशन दी जायगी, इतने पैसे से इंदिरा आवास के मकान बनेंगे, इतने पैसे से विधवा पेंशन दी जायगी, इतने पैसे से ये होगा, इतने पैसे से वो होगा।

तो हमारी ज़रूरत कुछ और है। जैसे हो सकता है कि हम, हमारे गांव में, सिंचाई पर पैसा खर्च करना चाहते हैं। या हम कुछ डॉक्टर और लगाना चाहते हैं। लेकिन सारा का सारा पैसा दिल्ली में तय होकर आता है कि कितना पैसा किसके ऊपर खर्च किया जायेगा।

हम उड़ीसा के एक गांव में गये। उस गांव में हैज़े से 63 परिवार पीड़ित थे। जो सबसे बगल का अस्पताल था वो वहां से करीब 15 किमी. दूर था और वहां तक पहुंचने का कोई साधन नहीं था। गांव की पंचायत के पास 6 लाख रुपये से भी ज़्यादा पैसा था। लेकिन सारा पैसा टाईड फ़ंड था। किसी न किसी योजना में आया था। उस पैसे को इस्तेमाल करके वो एक वाहन किराये पर नहीं ले

सकते थे। ताकि जो पीड़ित लोग हैं उनको अस्पताल पहुंचाया जाता। और नतीजा ये हुआ कि 7 लोगों की मौत हो गयी। तो वो पैसा किस काम आया? जिस पैसे से हम अपने लोगों की जान न बचा पायें, वो पैसा किस काम आया?

एक और उदाहरण लें। ऐसा लगता है कि एक बार दिल्ली के एक अफ़सर को एक सपना आया। उसने सपने में देखा कि अगर हमारे देश के हर गांव के लोग अपने अपने गांव का पानी संचित करना चालू कर दें तो हमारे देश की पानी की समस्या दूर हो जायेगी। तो बस एक फरमान जारी हुआ। ऊपर से एक योजना बनी। योजना का नाम कुछ इसी तरह का था- 'हमारा गांव हमारा पानी', कि जो जो गांव अपने अपने यहां ऐसे सिविल ढांचे बनायेंगे कि अपने गांव के पानी को गांव में ही संचयन करेंगे तो उन गांवों को सरकार ऐसे ढांचे बनाने के लिए 60 हज़ार रुपये या एक लाख रुपये देगी। दिल्ली से योजना चली, एक राज्य की राजधानी में पहुंची। वहां से हर कलक्टर के पास गयी। एक ज़िले के ज़िला कलक्टर ने अपने ज़िले के सारे सरपंचों को बुलाया और उनको कहा कि ऐसे ऐसे योजना आयी है, आप लोग भी अपने अपने गांव में ऐसा कीजिए। तो इस गांव का सरपंच अपने गांव में वापस आया और सारे गांव को उसने इकट्ठा किया और कहा भई ऐसी योजना आयी है और हमें ऐसी तैयारी करनी है कि हमारे गावं का पानी हमारे गांव में ही रह जाय। उसके लिए हमें एक लाख रुपया मिलेगा। लोगों ने जब ये बात सुनी तो सब लोग हंसने लगे। लोग हंस इसलिए रहे थे, क्योंकि उस गांव में बाढ़ आती है। लोग पानी संचयन नहीं करना चाहते, लोग पानी बाहर भेजना चाहते हैं।

तो इतनी बेतुकी योजनाएं दिल्ली से बनके आती हैं। सारे देश की सारी समस्याओं का समाधान योजनाओं से नहीं निकल सकता। मेरा तो ये मानना है कि देश की किसी भी समस्या का समाधान दिल्ली में बनने वाली योजनाओं से नहीं हो सकता। दो अगल-बगल के गांवों की ही स्थिति इतनी भिन्न होती है, इतनी अलग होती है कि आप उनकी समस्याओं को दिल्ली में बैठे समझ ही नहीं सकते। उनके समाधान आप सोच ही नहीं सकते।

बी. पी. एल. की राजनीति :

एक और बात। ये जितनी भी सरकारी योजनाएं बनती हैं, इन सारी सरकारी योजनाओं ने लोगों को भिखारी बनाके रख दिया है। इनमें से ढेरों योजनाएं ग़रीबी उन्मूलन के नाम पर, ग़रीबों के नाम पर बनती हैं। बीपीएल के नाम पर बनती हैं। इस बीपीएल की राजनीति को हमें समझना पड़ेगा।

ये बीपीएल की योजनाएं दिल्ली में इसलिए बनाई जाती हैं ताकि सत्तारूढ़ पार्टी को वोट मिले। दिखावा किया जाता है। कहा जाता है कि हम ग़रीबों की सरकार हैं। ग़रीबों के लिए योजनाएं बना रहे हैं। ग़रीबी उन्मूलन चाहते हैं। ग़रीबों के लिए कहकर योजनाऐं बनायी जाती हैं लेकिन जो लोग योजना बनाते हैं उनको पहले दिन से पता है कि ये पैसा ग़रीबों तक नहीं पहुंचने वाला और वो केवल दिखावा कर रहे हैं।

हम हमारे देश की एक राष्ट्रीय पार्टी के एक बड़े नेता से मिले। हमने उनको कहा कि ''आप ये सारी योजनाएं दिल्ली में बनाना बंद कीजिए और सीधे सीधे पैसा गांव में भेज दीजिए। हर गांव में जनता खुद तय कर लेगी कि उनको क्या चाहिए''। तो उसने कहा कि ''क्या आपको पता है कि एक एक योजना के इर्द गिर्द कितने बड़े बड़े मगरमच्छ बैठे हैं? अगर हमने योजनाएं बनानी बंद कर दीं तो हमारी पार्टी की सरकार गिर जाएगी। ये पार्टियां अपना समर्थन वापस ले लेंगी''। तो इसका मतलब इनको पता है कि ये पैसा ग़रीबों तक न ही पहुंच रहा है और न ही पहुंचेगा। फिर ये क्यों योजनाएं बना रहे हैं? योजनाएं वो इसलिए बना रहे हैं क्योंकि इनको चोरी करनी है। ये जानबूझ कर एक तरफ तो योजनाएं बना कर दिखाते हैं कि ये ग़रीबों की सरकार है। और दूसरे इनको पता है कि ये पैसा तो उनकी अपनी जेब में ही आना है। तो ये योजनाएं इसलिए बनाई जाती हैं ताकि एक तरफ तो वोट मिले और दूसरी तरफ चोरी करने के लिए मौका मिले।

उधर इन योजनाओं का गांव की जनता के ऊपर बहुत बुरा असर पड़ा है। आप किसी गांव में घुस जाइये। वहां पर लोग आपको घेर लेंगे और सबसे पहली मांग उनकी ये होगी कि साहब मेरा बीपीएल की सूची में नाम नहीं आया। मेरा नाम बीपीएल में डलवा दीजिए। बीपीएल का मतलब क्या होता है? बीपीएल का मतलब 'भिखारी'। एक ऐसा व्यक्ति जो ये कहता है कि मैं सक्षम नहीं हूँ, मेरे पास पैसा नहीं है, मैं एक बहुत ही दीन हीन व्यक्ति हूं और समाज से चाहता हूं कि समाज मेरी मदद करे। और इस देश की विसंगति देखिये कि हर आदमी ये कह रहा है कि ''मेरे को भिखारी बना दो, मेरे को भिखारी बना दो, मेरे को भिखारियों की लिस्ट में डाल दो''। होड़ लगी हुई है लोगों के अंदर कि हम सारे भिखारी बनना चाहते हैं। ऐसा देश जिसका हर आदमी भिखारी बनना चाहता हो, ऐसा देश कैसे प्रगति कर सकता है? कभी प्रगति नहीं कर सकता।

मैं देश में इतना घूमा लेकिन मुझे एक आदमी ऐसा नहीं मिला जो ये कहे कि मैं अभी तक बीपीएल की लिस्ट में था, मैं भिखारियों की लिस्ट में था, लेकिन अब मैं अपने पैरों पर खड़ा हो गया हूं, मुझे बीपीएल की लिस्ट से निकाल दो। कोई अपने पैरों पर खड़ा नहीं होना चाहता है। सब कहते हैं कि मुझे भिखारियों की लिस्ट में डाल दो। तो ये सारी की सारी योजनाएं लोगों की मानसिकता को बर्बाद कर रही हैं।

तो पहली बात तो हमें ये समझ में आई कि हमारा सरकारी कर्मचारियों पर कोई नियंत्रण नहीं है। दूसरी बात ये समझ में आई कि हमारा सरकारी फ़ंड के इस्तेमाल पर भी कोई नियंत्रण नहीं है।

सरकारी नीतियों और क़ानूनों पर कोई नियंत्रण नहीं :

हमारी सरकारें इतने क़ानून बनाती हैं, इतनी नीतियां बनाती हैं। इन सारे क़ानूनों के बनने पर, इन सारी नीतियों के बनाने पर भी हमारा कोई नियंत्रण नहीं है।

इस पुस्तक के पहले अध्याय में इस बात का ज़िक्र है कि किस तरह हमारी संसद ऐसे ऐसे क़ानून पारित करती है जो देशी विदेशी कंपनियों या विदेशी सरकारों के प्रभाव में आकर किये जाते

हैं। इस देश के लोगों की ज़िंदगी कौड़ियों के भाव दांव पर लगा दी जाती है।

तो वोट डालते हैं हम, सरकार चुनते हैं हम और हमसे सरकार पूछती नहीं है कि हमें किस तरह के क़ानून चाहिएं। क़ानून बनाने के पहले सरकार कंपनियों और विदेशी सरकारों से पूछती है।

तो तीसरी बात ये निकलकर आती है कि हमारे देश के क़ानूनों के बनने पर, हमारे देश की संसद पर, हमारे देश की विधान सभाओं पर जनता का किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं है।

प्राकृतिक संसाधनों पर कोई नियंत्रण नहीं :

हमारा, हमारे देश के प्राकृतिक संसाधनों पर भी कोई नियंत्रण नहीं है। हमारे जितने प्राकृतिक संसाधन हैं जैसे जल, जंगल, ज़मीन, खनिज आदि इनको छीन छीन कर कंपनियों को दिया जा रहा है।

ज़मीन

इस वक्त पूरे देश में ज़मीनों के अधिग्रहण को लेकर आग लगी हुई है। लगभग हर राज्य में कम से कम तीन या चार जगहों पर तो ज़मीन अधिग्रहण के ख़िलाफ लोगों के आंदोलन चल ही रहे हैं। लोगों की मर्ज़ी के ख़िलाफ ज़मीनें अधिग्रहण की जा रहीं हैं। ज़मीनों के अधिग्रहण को लेकर लोगों की बुनियादी तौर पर निम्न आपत्तियां हैं:-

(क) कई किसानों का कहना है कि हम ज़मीनें नहीं देंगे। लोगों को समझ नहीं आ रहा है कि जिन योजनाओं के लिए ज़मीनें छीनी जा रहीं हैं, वो जनहित में कैसे हैं? सरकारें इस देश के लोगों को यह समझाने में नाकाम रही हैं। अधिकतर जगहों पर ज़मीनें कुछ कंपनियों को देने के लिए अधिग्रहित की जा रहीं हैं। यह बात इस देश के लोगों की समझ के बिल्कुल परे है कि लोगों के द्वारा चुनी हुई सरकारें, लोगों के कड़े विरोध के बावजूद कुछ कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिए क्यों ज़मीनें छीन रही हैं?

(ख) कुछ का कहना है कि हमें ज़मीन के बेहतर दाम चाहिए। जिन दामों पर किसानों से ज़मीनें छीनी जाती हैं, वे बहुत कम हैं। लगभग हर आंदोलन में लोगों का दाम को लेकर सरकार से झगड़ा चल रहा है। बिना लोगों से सलाह मशविरा किए, लोगों से ज़मीन छीन ली जाती है और दाम भी तय कर दिये जाते हैं। ऊपर से यह पैसा भी लोगों को कई कई दशकों तक नहीं मिलता।

(ग) कई आदिवासी इलाके, जहां से ज़मीनें अधिग्रहित की गई हैं, वहां मुआवज़े के तौर पर यदि किसान को एक या दो लाख रुपये मिल भी गए, तो इससे उसकी ज़िंदगी चलने वाली नहीं है। इस दो लाख रुपये का वो क्या करेंगे? कुछ एकड़ ज़मीन पर खेती करके वो अपनी ज़िंदगी बसर ज़रूर कर लेते हैं। पर एक या दो लाख रुपये से ज़िंदगी नहीं कटेगी। ऐसे सभी किसानों को सरकारें उनकी ज़मीनें छीनकर भुखमरी के कगार पर छोड़ देती हैं।

(घ) अक्सर जब गांव के गांव अधिग्रहित किये जाते हैं तो ज़मीन वालों को तो ज़मीन के दाम मिल जाते हैं पर जो लोग वहां मज़दूरी करते थे या गांव में कोई दुकान आदि लगाते थे या कोई अन्य व्यवसाय करते थे, उन्हें कुछ नहीं मिलता। वो सब के सब बेरोज़गार हो जाते हैं।

(ङ) तो विभिन्न परियोजनाओं के लिए किये जा रहे भूमि अधिग्रहण में कंपनी को मोटा मुनाफा होता है, अफ़सरों और नेताओं को मोटी रिश्वत मिलती है, किसानों को बेरोज़गारी मिलती है, भूमिहीनों को भुखमरी और देश की खाद्य सुरक्षा कमज़ोर होती है। सरकारें जनता को भी तो समझाएं कि यह 'जनहित' में कैसे है?

आज की भूमि अधिग्रहण की व्यवस्था को हमें ठीक से समझना होगा। मान लीजिए हमारे गांव में कोई कंपनी एक फैक्टरी लगाना चाहती है। तो वो कंपनी हमारे गांव वालों के पास नहीं आती। वो कंपनी जाती है राज्य सरकार के पास। और राज्य सरकार में बैठा हुआ कोई अधिकारी या नेता उनसे पैसे खा लेता है और उसे मंज़ूरी दे देता है कि ''आप इस गांव में फैक्टरी लगा सकते हो''। और उसके बाद सारी सरकारी ताकत इस्तेमाल करके, पुलिस इस्तेमाल करके लोगों को बेदखल किया जाता है, उनसे ज़मीन कौड़ियों के भाव छीनी जाती है। और वो ज़मीन इन कंपनियों को कौड़ियों के भाव दे दी जाती है। क्योंकि राज्य सरकार में किसी ने रिश्वत ले ली है।

स्पेशल इकॉनॉमिक ज़ोन (सेज़) के नाम पर इस देश में न जाने कितने लोगों की ज़मीनें छीनी गईं। क्या आपको पता है कि केंद्र सरकार में एक घंटे की मीटिंग में सेज़ के 30-30 प्रोजेक्ट पास किये जाते थे? एक सेज़ प्रोजेक्ट इतना बड़ा होता है। उसे आप मात्र दो मिनट की चर्चा में कैसे पास कर सकते हो? तो पास करना तो महज़ दिखावा था। पास करने के नाम पर पैसे खाते हैं। जिस जिस कंपनी की रिश्वत का पैसा आ गया, उसका प्रोजेक्ट दो मिनट में पास। जिनकी रिश्वत नहीं आई, उनका प्रोजेक्ट लटका दिया जाता है।

तो लोगों का अपनी ज़मीनों पर भी कोई नियंत्रण नहीं है।

ख़निज

हमारे देश में ख़निज पदार्थों की ख़दानें निजी कंपनियों को औने-पौने दाम में बेची जा रही हैं या लीज़ पर दी जा रही हैं। हमारे देश में ख़निज बहुतायत में हैं। कोयला है, लोहा है, बौक्साइट है। ये एक दिन में पैदा नहीं हुए। ये हज़ारों साल की प्राकृतिक प्रक्रिया से बने हैं। पर हमारे देश की सरकारें इन्हें निजी कंपनियों को धड़ल्ले से औने पौने दामों में बेच रही हैं। निजी कंपनियां इन ख़निजों को हमारे देश के फायदे के लिए इस्तेमाल नहीं करतीं। ये कंपनियां उन ख़निजों को निकालकर अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में बहुत अधिक दामों में बेचकर भारी मुनाफ़ा कमाती हैं।

जैसे लोहे की ख़दानें लेने वाली कंपनियां सरकार को महज़ 27 रुपये प्रति टन रॉयल्टी देती हैं।

उसी लोहे को ये कंपनियां अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में 6000 रुपये प्रति टन के हिसाब से बेचती हैं। (ख़दान से लोहा निकाल कर उसकी सफाई इत्यादि करने में लगभग 300 रुपये प्रति टन खर्च होता है।) क्या यह सीधे सीधे देश की संपत्ति की लूट नहीं है?

जिस तेज़ी से देश की ख़दानों से ख़निज निकाला जा रहा है, ऐसा लगता है कि कुछ वर्षों में देश के ख़निज खत्म हो जाएंगे। देश के कुछ भागों में तो ख़निज खत्म भी होने लगे हैं जैसे कुछ वर्षों पहले तक गोवा से बड़ी मात्रा में लोहा जापान निर्यात किया जाता था। सुनते हैं कि गोवा का अच्छा लोहा लगभग समाप्त हो गया है। कर्नाटक के बेलाडिला का लोहा दुनिया का सबसे बेहतरीन लोहा माना जाता है। यह लोहा पिछले कुछ वर्षों से कर्नाटक के कुछ नेताओं और कंपनियों द्वारा इतनी तेज़ी से निकाला जा रहा है कि अगले 25 वर्षों में बेलाडिला की खदानें खाली हो जायेंगी। यह लोहा चीन भेजा जा रहा है। चीन के पास लोहे की अपनी ख़दाने हैं पर वो अभी उन्हें नहीं खोद रहा। शायद दुनिया का लोहा खत्म होने के बाद वो अपनी खदानें इस्तेमाल करेगा।

ज़ाहिर है कि देश के ख़निज, केंद्र और राज्यों की सरकारों में बैठे नेताओं और अफ़सरों के हाथों में बिल्कुल सुरक्षित नहीं है। ये पार्टियां, ये नेता पूरे देश को उठाकर बेच डालेंगे।

दूसरी बात, इन कंपनियों को जब इन ख़दानों के परमिट दिये जाते हैं, तो जो लोग वहां रह रहे हैं वहां से उन्हें उजाड़ा जाता है। उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ की सरकारें खनन के लिए ढेरों करार भिन्न भिन्न कंपनियों के साथ साइन कर चुकीं हैं, जिनके तहत कई लाख एकड़ भूमि आदिवासियों से छीनकर इन कंपनियों को दी जा रहीं हैं। उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ के अनेक इलाक़े जनता और पुलिस के बीच युद्ध के मैदान बन गए हैं। इसी से इन इलाकों में नक्सलवाद को बढ़ावा मिला है। आदिवासियों की ज़मीनें औने-पौने दामों में छीन कर इन कंपनियों को दे दी जाती हैं। इन ख़दानों से ये कंपनियां भारी मुनाफ़ा कमाती हैं, लेकिन आदिवासी बेरोज़गारी और भुखमरी का शिकार हो जाते हैं। उनके गांव और समाज टूट जाते हैं।

तीसरी बात, ये कंपनियां ख़निज निकालते वक्त कोई एहतियात नहीं बरततीं। ये ख़निज निकालते वक्त पर्यावरण खराब करती हैं। जिसका खामियाज़ा आस पास के रहने वाले लोगों को भुगतना पड़ता है। जब लोग अफ़सरों को शिकायत करते हैं तो सरकारी अफ़सर रिश्वत खाकर लोगों की शिकायतों को अनदेखा कर देते हैं।

जैसे रांची के पास एक गांव है, वहां पर ओ.एन.जी.सी. के तेल निकालने के कुंए हैं। ओ.एन.जी.सी. के कुछ कुँओं में एक बार मीथेन गैस लीक होने लगी। इस तरह के बहुत हादसे आस पास के गांव में हो चुके थे। जब मीथेन गैस चारों तरफ वातावरण में लीक होती है तो आप कहीं भी आग नहीं जला सकते। जैसे ही माचिस की तीली लगाएंगे पूरे वातावरण में आग भभक उठेगी। लोग बहुत परेशान हो गये। उनके पास कोई चारा नहीं था। वो ओ.एन.जी.सी. के ख़िलाफ कुछ नहीं कर सकते। उन्होंने कलक्टर को शिकायत की। कलक्टर ने कहा कि हम कार्रवाई कर रहे हैं। कलक्टर

ने इतने काम चलाऊ तरीके से बात की कि जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसने कहा कि इस इलाके में मीथेन गैस का रिसना या लीक होना तो आम बात है। लोगों को इसे सहन करना पड़ेगा। कलक्टर को गैस रिसने से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उसकी ज़िंदगी बड़े सुचारू रूप से चल रही है। तो लोगों का देश के ख़निजों पर, उनकी खुली लूट पर और उनके ख़नन से फैल रहे प्रदूषण पर कोई नियंत्रण नहीं है।

जंगल

बीर सिंह मरकम छत्तीसगढ़ के बस्तर ज़िले के एक गांव का रहने वाला आदिवासी है। जंगल की एक छोटी सी ज़मीन के टुकड़े पर वह मक्का उगाता था। इसी से उसके पूरे परिवार की रोटी चलती थी। 1998 में वन विभाग वाले बीर सिंह के साथ उसके गांव के 75 लोगों को गिरफ्तार करके ले गए और जंगल की ज़मीन पर अवैध कब्ज़ा करने के जुर्म में उन सबको जेल में डाल दिया।

रिहा होने के बाद अगले कुछ वर्षों में मरकम को कम से कम 20 बार कोर्ट जाना पड़ा। कोर्ट उसके गांव से लगभग 30 किमी दूर है। हर कोर्ट की पेशी ने उसकी और कमर तोड़ दी। अंतत: सभी खर्चे और जुर्माना चुकाने के लिए उसे अपने बैल बेचने पड़े।

मरकम जैसे लाखों करोड़ों ऐसे आदिवासी हैं जिनके साथ भारत की आज़ादी ने सबसे भद्दा मज़ाक किया। 1947 तक, अंग्रेज़ों ने जब जब आदिवासी क्षेत्रों पर कब्ज़ा करने की कोशिश की, उन्हें मुंह की खानी पड़ी। तब अंग्रेज़ों ने आदिवासी इलाकों को अपने सीधे कब्ज़े से बाहर रखने की नीति अपनाई। पूरे भारत पर लागू होने वाले अंग्रेज़ी क़ानून इन आदिवासी इलाकों पर लागू नहीं होते थे। अंग्रेज़ों के ज़माने में इन आदिवासी इलाकों को, जहां अंग्रेज़ों का क़ानून लागू नहीं होता था, 'एक्सक्लूडेड एरिया' कहा जाता था अर्थात् ये इलाके अंग्रेज़ी सत्ता से काफ़ी हद तक बाहर थे।

1950 में भारतीय संविधान बना और सभी भारतीय क़ानून सभी आदिवासी इलाकों पर भी लागू कर दिये गए। जिस ज़मीन पर आदिवासी सदियों से रह रहे थे, उस ज़मीन की मिल्कियत दिखाने के लिए अधिकतर आदिवासियों के पास तो कोई कागज़ ही नहीं थे। बाहरी लोगों ने इसका फ़ायदा उठाया और छल से उनकी ज़मीनें हथियाने लगे। उसी तरह जिन आदिवासियों की अभी तक जंगलों पर आजीविका निर्भर थी (कई आदिवासी तो जंगलों में ही रहते थे) इन सभी जंगलों को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया गया और अचानक ये आदिवासी अपने ही घर में, अपनी ही ज़मीन पर और अपने ही जंगलों में गुनहगार हो गये। वन विभाग के कर्मचारी उन्हें तरह तरह से तंग करने लगे।

वन विभाग के अधिकारी, यहां तक की अदने से कर्मचारी भी, आदिवासियों के गांवों में आकर उन्हें परेशान करते हैं। हालांकि ये आदिवासी सदियों से जंगलों में रहते आए, लेकिन उनके पास इन ज़मीनों के कागज़ नहीं हैं। तो इन्हें इन ज़मीनों पर अनाधिकृत कब्ज़ा किया हुआ माना जाता

है। अधिकारी आकर लोगों को खेत जोतने से रोकते हैं, लकड़ी लेने से रोकते हैं, पत्ते और फल नहीं बीनने देते, पशु नहीं चराने देते। हाथियों को लाकर खेतों को रौंद दिया जाता है। बबूल के बीज चारों तरफ फेंक कर मिट्टी बर्बाद कर देते हैं। लोगों को पीटा जाता है, गिरफ्तार किया जाता है और उनकी फसलें बर्बाद कर दी जाती हैं। वन विभाग के कर्मचारी तो एक तरह से अपनी ड्यूटी कर रहे हैं- वनों की रक्षा।

एक तरफ तो आदिवासियों को जंगलों से बेदखल किया जा रहा है, दूसरी तरफ वन विभाग के कर्मचारी, ठेकेदार और नेता मिलकर जंगलों को खुलेआम लूट रहे हैं। जो वन आदिवासियों और लोगों के संरक्षण में सदियों से सुरक्षित थे, वही वन अब वन विभाग के अधीन आते ही लुप्त होने लगे हैं। आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय और जंगलों की खुली लूट के कुछ उदाहरण:-

(क) हर वर्ष सरकार वनों से तेंदू पत्ते निकालने के लिए ठेके देती है। एक ठेकेदार को 1500 से 5000 तक बोरे निकालने का ठेका मिलता है। ठेका तो इतने का मिलता है पर वन विभाग के अधिकारियों को रिश्वत देकर असली में वो कितना निकालता है, ये किसी को नहीं पता चलता। एक छोटे से छोटा ठेकेदार भी साल में 15 लाख से ज़्यादा कमा लेता है। पर वो आदिवासियों को जंगल से तेंदू पत्ता निकालने का 30 पैसा प्रति बंडल से भी कम देता था, जो बाद में नक्सलियों के दबाव में एक रुपया प्रति बंडल किया गया।

(ख) सरकार पेपर मिलों को बहुत ही सस्ते में कई कई वर्षों तक लाखों टन बांस निकालने की इजाज़त देती है। और ये मिल वाले वहीं के आदिवासियों को एक बंडल निकालने के 10 से 20 पैसे मज़दूरी देते हैं। और खुद भारी मुनाफ़ा कमाते हैं।

तो हमारे देश के वनों को नेता, अफ़सर और ठेकेदार मिलकर जमकर लूट रहें हैं, पर लोगों का इस लूट पर कोई नियंत्रण नहीं है।

पानी

देश के कई शहरों में पानी की व्यवस्था विदेशी कंपनियों को बेची जा रही है। दिल्ली की सरकार दिल्ली की पानी व्यवस्था को कुछ विदेशी कंपनियों को बेचने जा रही थी। पर लोगों के आंदोलन के बाद उन्हें इसे रोकना पड़ा।

हमारे देश की नदियां तक बेची जा रही हैं। छत्तीसगढ़ में तो पूरी की पूरी शिवनाथ नदी एक कंपनी को बेच दी गयी। अब अगर किसी व्यक्ति को किसी भी काम के लिए उस नदी का पानी इस्तेमाल करना है-सिंचाई के लिए, पीने के लिए, कपड़े धोने के लिए तो कंपनी की मर्ज़ी के बिना नहीं कर सकते।

देश की लगभग सभी नदियों पर बांध बनाए जा रहें है। गंगा पर इतने बांध बनाए जा रहें है कि बताते हैं कि गंगा का अस्तित्व ही नहीं बचेगा। गंगा महज़ बांधों के बीच में बहने वाली एक धारा

मात्र रह जाएगी। हम सहमत हैं देश को बिजली की ज़रूरत है। पर क्या हम इस बात को नकार सकते हैं कि देश को नदियों की भी ज़रूरत है? कई देशों में राष्ट्रीय नदियों को अपनी अविरल धारा में बहते रहने के लिए क़ानूनी संरक्षण है। हमारे देश में ऐसा नहीं है। पिछले कुछ सालों में जिस तेज़ी से हर नदी पर बांध बनाने के ठेके कंपनियों को दिए गए हैं, उससे लगता है कि सरकार में बैठे नेताओं और अफ़सरों को बिजली उत्पादन की कम और ठेकों में मिलने वाली रिश्वत कमाने की ज़्यादा तत्परता है। इस रफ्तार से कुछ ही वर्षों में सभी नदियां गंदे नालों में बदल जाएंगी।

इन सब उदाहरणों से एक बात तो साफ है कि इन पार्टियों, नेताओं और अफ़सरों के हाथों में हमारे देश के प्राकृतिक संसाधन खतरे में है। जल्द ही कुछ नहीं किया गया तो ये लोग मिलकर सब कुछ बेच डालेंगे।

क्या यही जनतंत्र है?

तो ज़ाहिर है कि इस पूरी की पूरी व्यवस्था पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। हम सरकारी कर्मचारियों का कुछ नहीं कर सकते। सरकारी फ़ंड पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। सरकारी नीतियों पर कोई नियंत्रण नहीं है। क़ानून बनने पर कोई नियंत्रण नहीं है। विधान सभाओं व संसद पर कोई नियंत्रण नहीं है। जल, जंगल, ज़मीन सहित जितने प्राकृतिक संसाधन हैं इनको बेचा जा रहा है। इस पर भी हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। एक दिन ये सारी पार्टियां और नेता मिलकर देश को बेच डालेंगे।

क्या यही जनतंत्र है? क्या इसी को हम जनतंत्र कहेगें कि पांच साल में एक बार वोट डालो और उसके बाद अपनी ज़िंदगी इन नेताओं और अफ़सरों के हाथ में गिरवी रख दो।

ये जनतंत्र नहीं हो सकता। ज़रूर कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है। तो हमारे देश की मूल समस्या ये है कि हमारे देश में जनतंत्र नहीं है।

हमें जनतंत्र चाहिए। अब ये पांच साल में एक बार वोट डालने की राजनीति नहीं चलेगी। अब सीधे सीधे जनता को सत्ता में भागीदारी चाहिए। जनता निर्णय ले और नेता और अफ़सर उन निर्णयों का पालन करें।

❖❖❖

बीते समय की बात

जब हम इस तरह की बातें करते हैं तो बहुत लोग कहते हैं कि जनता कैसे निर्णय लेगी? जनता तो आपस में लड़ेगी। जनता निर्णय नहीं ले सकती।

इस देश में सदियों से जनता निर्णय लेती आयी है। ये बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम अपने देश की संस्कृति भूल गये। भारत ने जनतंत्र कहां से सीखा? बहुत लोगों का मानना है कि हमने जनतंत्र अमरीका से सीखा। कोई कहता कि हमने जनतंत्र इंग्लैंड से सीखा। सच बात ये है कि जनतंत्र भारत में बुद्ध के ज़माने से चला आ रहा है। बुद्ध के ज़माने का जनतंत्र आज के जनतंत्र से कहीं ज़्यादा सशक्त था। वैशाली दुनिया का सबसे पहला गणतंत्र था। उन दिनों में राजा का बेटा राजा तो बनता था, राजा के चुनाव नहीं होते थे, लेकिन राजा की चलती नहीं थी। सारे निर्णय पूरे गांव की ग्राम सभा में लिए जाते थे। जो ग्राम सभा कहती थी, जो गांव के लोग कहते थे, राजा को वही निर्णय मानने पड़ते थे। आज हम पांच साल में अपने राजा को चुनते तो हैं लेकिन हमारी उस राजा पर चलती नहीं हैं। उन दिनों में राजा को चुनते तो नहीं थे लेकिन राजा पर जनता की चलती थी।

उन्हीं दिनों की एक घटना है। वैशाली का एक राजा हुआ। एक दिन सभा चल रही थी। सारे नगर के लोग बैठे हुए थे, राजा बैठे थे। कुछ व्यक्ति एक लड़की की तरफ इशारा करके कहते हैं कि आप हमारे नगर की नगर वधू बन जाइए। वो लड़की कहती है कि ''ठीक है, मैं नगर वधू बन जाऊँगी। लेकिन मेरी एक शर्त है। मुझे राजा का राजमहल चाहिए। अगर आप मुझे राजमहल दे दें तो मैं नगर की नगर वधू बनने के लिए तैयार हूं''। तो वहां पर प्रस्ताव रखा जाता है और प्रस्ताव पारित हो जाता है कि आज से इस राजा का राजमहल उस लड़की का हुआ। राजा वहीं बैठा हुआ था और सब कुछ सुन रहा था। वो सकपका जाता है, बेचैन होता है और कहता है- ''ऐसे कैसे हुआ, ये तो मेरा राजमहल है। आप मेरा राजमहल इस लड़की को कैसे दे सकते हैं?'' तो जनता कहती है - ''ये आपका राजमहल नहीं है। ये राजमहल हम लोगों ने आपको दिया है। हम टैक्स

देते हैं। हमारे पैसे से ये राजमहल बना। आज इस देश की जनता ये राजमहल आपसे वापस लेकर इस लड़की को दे रही है। अगर आपको राजमहल चाहिए तो आप अपने लिए दूसरा राजमहल बनवा लीजिए।'' और उस राजा को वो राजमहल खाली करके उस लड़की को देना पड़ा और अपने लिए दूसरा राजमहल बनवाना पड़ा। किसी लड़की को नगर वधू बनाना एक गलत प्रथा है लेकिन उस समय की राजनीति में जनता की ताकत का अन्दाज़ हम इस उदाहरण से लगा सकते हैं।

हमारे देश की राष्ट्रपति इतने बड़े बंगले में रहती है। दिल्ली के बीचों-बीच 340 एकड़ ज़मीन पर राष्ट्रपति का बंगला है। और उसी दिल्ली की 40 प्रतिशत आबादी झुग्गी झोंपड़ी में कुलबुला रही है। कीड़े मकोड़ों की तरह रहती है। दो गज़ ज़मीन नहीं है उनके पास सोने के लिए। एक एक झोंपड़ी में दस दस लोग फंसे रहते है। अगर हम लोग प्रस्ताव पारित करें कि हमारे देश की राष्ट्रपति को थोड़े छोटे बंगले में चले जाना चाहिए, तो आपको क्या लगता है -क्या वो मानेंगी? बिल्कुल नहीं मानने वाली।

नई दिल्ली में अफ़सरों के, मंत्रियों के इतने बड़े बडे बंगले हैं। एक मिंया बीवी इतने बड़े बंगले में रहते हैं। अगर हम इन सारे अफ़सरों को और नेताओं को कहें कि आप थोड़े छोटे बंगले में चले जाओ ताकि दिल्ली की जनता को पांव पसारने के लिए ज़मीन मिले, तो क्या वो बंगले खाली करेगें? नही करेंगे।

वो जनतंत्र था जब लोग प्रस्ताव पारित करके अपने राजा का राजमहल खाली करवा लेते थे। आज जनतंत्र नहीं है जब हम एक प्रस्ताव पारित करके अपने घर के सामने की सड़क नहीं बनवा सकते, अपने स्कूल के अध्यापक को ठीक नहीं कर सकते, अपने अस्पताल के डॉक्टर को ठीक नहीं कर सकते।

तो पहले ऐसी व्यवस्था थी कि सीधे सीधे जनता निर्णय लेती थी और राजा उसका पालन करते थे। इस किस्म की बात हमारे देश में 1860 तक चलती रही । गांव की व्यवस्था पर सीधे सीधे गांव के लोगों का नियंत्रण था। हमारे गांव की सिंचाई व्यवस्था कैसी होगी, गांव के लोग तय करते थे। हमारे गांव की शिक्षा व्यवस्था कैसी होगी, स्कूल कैसे चलेंगे, गांव के लोग तय करते थे। स्वास्थ्य व्यवस्था कैसी होगी, गांव के लोग तय करते थे। हमारे देश पर कई लोगों ने आक्रमण किया, लेकिन उन्होंने केवल केन्द्र सरकार पर कब्ज़ा किया। उन्होंने गांव की व्यवस्था को नहीं छेड़ा। केन्द्र सरकार में बैठकर वो केवल गांव से वसूलने वाला टैक्स कम या ज़्यादा करते रहते थे। लेकिन गांव की व्यवस्था को उन्होने नहीं छेड़ा।

1830 में लॉर्ड मैट काल्फ, जो कि उस वक्त के कार्यकारी गवर्नर जनरल हुए, वो लिखते हैं कि इस देश की बुनियाद यहां की ग्राम सभाएं है। यहां के लोग मिलते हैं और सारा गांव निर्णय लेता है। और उसी से गांव चलता है। 1860 में अंग्रेज़ों ने इन ग्राम सभाओं को तोड़ने के लिए क़ानून बनाया। क्योंकि वो समझ गये थे कि जब तक ग्राम सभाएं नहीं तोड़ी जाएंगी तब तक अंग्रेज़ों की

बुनियाद इस देश में नहीं टिकेगी। उन्होंने क़ानून बनाकर कलक्टर राज कायम किया। सारे अधिकार जो पहले लोगों के पास थे, ग्राम सभाओं के पास थे, वो सारे अधिकार उनसे छीन कर एक अंग्रेज़ कलक्टर को दे दिये गये। तो पहले गांव के लोग सिंचाई व्यवस्था चलाते थे। अब एक सिंचाई विभाग बना दिया गया। पहले गांव के लोग शिक्षा व्यवस्था चलाते थे। अब एक शिक्षा विभाग बना दिया गया। ज़िंदगी के हर पहलू से संबंधित हर चीज़ का एक विभाग बना दिया गया। और उन सारे विभागों के ऊपर एक अंग्रेज़ अफ़सर को लाकर बिठा दिया गया, जिसको कहा गया 'कलक्टर'।

दुर्भाग्यवश आज़ादी के वक्त 1947 में हम लोगों ने जनता के जो अधिकार थे वो जनता को वापस नहीं लौटाए। ग्राम सभाओं के जो अधिकार थे, वो ग्राम सभाओं को वापस नहीं लौटाये। हमने केवल अंग्रेज़ कलक्टर को हटाके एक भारतीय कलक्टर बिठा दिया। बाकी सारी की सारी अंग्रेज़ी व्यवस्था हमने बरकरार रखी। जब तक वो अधिकार जनता को वापस नहीं दिये जाएगें तब तक सुधार नहीं हो सकता। तब तक आज़ादी नहीं आयेगी।

❖❖❖

वर्तमान पंचायती राज की विसंगतियां

कई लोग कहते हैं कि हम नया क्या कह रहे हैं? अभी भी, पंचायतें हैं तो सही। पंचायती राज व्यवस्था के ज़रिऐ सीधे जनता की भागीदारी हो, यह विचार तो बहुत अच्छा है। अंग्रेज़ों के पहले हमारे देश में ऐसा होता भी था। लेकिन आज़ादी के बाद हमारे देश में पंचायती राज के नाम पर जो व्यवस्था लागू की गई, उसने जनता को सीधे अधिकार देने के बजाय नेताओं और अधिकारियों के भ्रष्टाचार के लिए नए मौके खोल दिये हैं।

स्वशासन की प्रभावी संस्था होने के बजाय दुर्भाग्यवश पंचायतें केन्द्र एवं राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाओं एवं निर्देशों को लागू करने की एजेंसी बन कर रह गयी हैं। अधिकतर योजनाएं दिल्ली या प्रांतीय राजधानियों में बनायी जाती हैं। पंचायतों को केवल उन्हें लागू करने का निर्देश दिया जाता है। ग्राम सभाओं यानी पूरे गांव की खुली बैठक का आयोजन कभी-कभार ही होता है, क्योंकि उन्हें बुलाने में किसी की रुचि नहीं होती है। जब कभी ग्राम सभाओं की बैठक बुलायी जाती है, तब भी लोग इनमें भाग लेने के लिए बामुश्किल ही आते हैं, क्योंकि ग्राम सभाओं में रखी गयी उनकी मांगों पर शायद ही कभी कोई कार्रवाई होती है।

हमारी पंचायती राज व्यवस्था में ढेरों कमियां हैं, पर मोटे तौर पर निम्न बातें इस व्यवस्था का गला घोटे हुए हैं:-

(क) पंचायतों को बहुत कम अधिकार व शक्तियां दिये गये हैं। सरकारी कर्मचारियों और सरकारी फ़ंड पर पंचायतों का किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं है।

(ख) जो थोड़े बहुत अधिकार पंचायतों को दिये भी गये हैं, वो सभी सरपंच या प्रधान में निहित हैं। किसी भी पंचायत में सरपंच ही सर्वे सर्वा है। वही सभी निर्णय लेता है। ग्राम सभाओं को यानि कि लोगों को किसी तरह का कोई अधिकार नहीं है। अधिकांश पंचायती राज क़ानूनों में ग्राम सभा को केवल सरपंच को सलाह देने का अधिकार है- सरपंच उस सलाह को मानने या न मानने

के लिए स्वतंत्र है।

(ग) इसीलिए अधिकतर सरपंच भ्रष्ट हो गए हैं। जब वो भ्रष्टाचार करते हैं तो लोगों को उसके ख़िलाफ किसी प्रकार की कोई कार्रवाई करने का कोई अधिकार नहीं दिया है। लोग केवल बेबस होकर देखते रहते हैं।

(घ) सरपंच के भ्रष्ट, निकम्मे या ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार के ख़िलाफ कार्रवाई करने का अधिकार कलक्टर को दिया गया है। कलक्टर किसी भी सरपंच के ख़िलाफ कभी भी कोई भी कार्रवाई शुरू कर सकता है। उन्हें निलंबित कर सकता है। इसीलिए अधिकतर सरपंच कलक्टर और बी.डी.ओ. से डरे रहते हैं। किसी भी ज़िले में कलक्टर एक तरह से राज्य सरकार के नुमाइंदे के रूप में काम करता है। जैसे राज्य सरकार में गवर्नर केन्द्र सरकार का नुमाइंदा होता है, वैसे ही ज़िले में कलक्टर राज्य सरकार का नुमाइंदा होता है। सौभाग्य से गवर्नर के पास राज्य सरकार में हस्तक्षेप करने के बहुत कम अधिकार हैं, पर दुर्भाग्यवश कलक्टर के पास किसी भी पंचायत में हस्तक्षेप करने के असीम अधिकार हैं। राज्य सरकारें कलक्टर के ज़रिये पंचायतों में मनमाने ढंग से हस्तक्षेप कर रही हैं। आइये देखते हैं मौजूदा पंचायती राज व्यवस्था की विसंगतियों के कुछ उदाहरण।

भौंडसी गांव में वृक्षारोपण अभियान :

किसी भी गांव में लोगों को पानी की भी ज़रूरत होती है, मिट्टी की भी ज़रूरत होती है, फ़सल की भी ज़रूरत होती है, सिंचाई की भी ज़रूरत होती है, हर चीज़ की ज़रूरत होती है। लेकिन सरकार में सिंचाई विभाग को इस से कोई मतलब नहीं है कि मिट्टी का क्या होगा? मिट्टी वाले विभाग को इस से कोई मतलब नहीं है कि पानी का क्या होगा? पानी वाले विभाग को इससे कोई मतलब नहीं है कि पेड़ों का क्या होगा? पेड़ों वाले विभाग को इससे कोई मतलब नहीं है कि दूसरी चीज़ों का क्या होगा? हर विभाग का वार्षिक लक्ष्य होता है और हर विभाग अपने लक्ष्य पूरे करने में लगा हुआ है।

दिल्ली के पास हरियाणा में एक गांव है भौंडसी। वन विभाग को एक बार लक्ष्य मिला कि उन्हें ज़्यादा पेड़ लगाने हैं। और इस गांव में पेड़ों की संख्या कम थी। तो उन्होंने अपने पेड़ ज़्यादा दिखाने के लिए हैलीकॉप्टर से कीकड़ के पेड़ों के बीजों की पूरे इलाके में बौछार करा दी। उसकी वजह से चारों तरफ कीकड़ ही कीकड़ के पेड़ हो गये। कीकड़ के पेड़ की इसलिए बौछार की गयी क्योंकि ये पेड़ बहुत जल्दी उग जाते हैं। तो उन्हें अपने लक्ष्य पूरे करने थे। उन्हें ये दिखाना था कि इस इलाके में पेड़ों का कितना घना जाल फैल गया है। लेकिन इन कीकड़ के पेड़ों ने वहां की सारी पानी व्यवस्था को बर्बाद कर दिया। क्योंकि कीकड़ का पेड़ बहुत पानी सोखता है। तो उस इलाके की ज़मीन में पानी का स्तर बहुत नीचे चला गया। चले थे भलाई करने और कर दी बुराई।

यह है हमारी पंचायती राज व्यवस्था। हमारे इलाके में कौन से पेड़ लगने चाहिए, इस पर न वहां के लोगों का नियंत्रण है और न ही पंचायतों का।

कुटुम्बाकम में शहर का कूड़ा :

मद्रास के पास एक गांव है कुटुम्बाकम। मद्रास के आसपास के 6 शहरों का कूड़ा डालने के लिए कई सालों से जगह ढूंढी जा रही थी। अचानक सरकार की बुरी नज़र इस गांव की गोचर भूमि पर पड़ी। इस गांव में लगभग 100 एकड़ गोचर भूमि है। जिस पर रोज़ लगभग 5000 पशु चरते हैं। वहां के कलक्टर ने आदेश पारित करके 70 एकड़ भूमि का अधिग्रहण कर लिया। ताकि उन 6 शहरों का कूड़ा इस ज़मीन पर डाला जा सके। ज़ाहिर है कि यहां के लोग बहुत क्रोधित हुए। उनकी पहली चिंता थी कि अब उनके पशु कहां चारा खाऐंगे? दूसरी बात कि शहरों का कूड़ा उनके गांव में क्यों डाला जाए, क्या उस गांव में बसने वाले लोग इंसान नहीं है? हद तो ये है कि गांव के लोगों से बिना पूछे कलक्टर ने ज़मीन अधिग्रहण कर ली थी। लोगों ने कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाया लेकिन कोर्ट में भी वो लोग हार गये क्योंकि क़ानूनन कलक्टर इस तरह से ज़मीन अधिग्रहित करने के लिए अधिकृत है।

क्या यही पंचायती राज है? जहां न पंचायतों को अधिकार है, न सरपंच को अधिकार है और न ही जनता को अधिकार है। तो मौजूदा पंचायती राज व्यवस्था में सरकार और कलक्टर मिलकर गांव के लोगों और वहां की पंचायत की मर्ज़ी के ख़िलाफ गांव की ज़मीन छीन सकते हैं। आस पास के शहरों का कूड़ा हमारी मर्ज़ी के ख़िलाफ हमारे गांव में डाल सकते हैं।

नरेगा का मज़ाक :

आज सारा का सारा पैसा ऊपर से नीचे चलता है। वो पैसा नीचे पहुंचने ही नहीं दिया जाता। हर अधिकारी उस पैसे को अपने स्तर पर ही खर्च करने पर तुला हुआ है। जैसे, नरेगा के क़ानून के मुताबिक, 4 प्रतिशत पैसा कंटिनजैंसी का होता है। मतलब कि इस पैसे से नरेगा के प्रोजैक्ट के ऊपर काम करने वाली महिलाओं के बच्चों के लिए सुविधा केन्द्र बनाया जाय, वहां पर मज़दूरों की पानी की व्यवस्था की जाय, उनके लिए सुविधाओं की व्यवस्था की जाए। तो इन सब चीज़ों के लिए और प्रशासनिक खर्चों के लिए या वहां के मज़दूरों के भले के लिए 4 प्रतिशत कंटिनजैंसी का पैसा दिया जाता है।

लेकिन कई ज़िलों में कलक्टरों की मनमानी हो रही है। ये पैसा नीचे गांव तक पहुंचने ही नहीं दिया जाता है। उत्तर प्रदेश के एक ज़िले में नरेगा का 4 प्रतिशत पैसा ज़िला अधिकारी ने ही रख लिया। और उस ज़िले में जितने गांव थे, उन सारे गांवों के लिए ज़िला अधिकारी ने अलमारियां खरीद दीं, दरियां खरीद दीं, और सारे गांवों में वो दरियां और अलमारियां बांट दी। लोगों को दरियों और अलमारियों की ज़रूरत नहीं थी। हालांकि क़ानूनन इस पैसे को खर्चने के बारे में ग्राम सभा में निर्णय होना चाहिए, लेकिन चूंकि पैसा ऊपर से नीचे चलता है, इसलिए बीच के अधिकारी मनमाने ढंग से अपने ही स्तर पर उसे खर्च देते हैं। क़ानून की बात करें तो यह गलत है, पर क्योंकि लोगों का इन अधिकारियों पर कोई नियंत्रण नहीं है, तो वो उनकी दादागिरी के ख़िलाफ कुछ नहीं कर सकते।

झाड़ू भी नहीं खरीद पातीं पंचायतें :

क़ानून में लिखा है कि अगर कोई सरपंच ठीक से काम नहीं करेगा, वो मीटिंग में नहीं आयेगा, भ्रष्टाचार करेगा तो कलक्टर को ये अधिकार है कि वो उस सरपंच के ख़िलाफ कार्रवाई कर सकता है, उसकी जांच कर सकता है, उसको हटा सकता है। अब एक कलक्टर के नीचे हज़ार दो हज़ार गांव आते हैं। उसे क्या पता कि कोई सरपंच ठीक से काम कर रहा है कि नहीं। ये किसको ज़्यादा पता होगा? जनता को या कलक्टर को? निश्चित तौर पर जनता को ये ज़्यादा पता होगा कि वो ठीक से काम कर रहा है या नहीं। लेकिन उसके ख़िलाफ कार्रवाई करने की ताकत जनता को नहीं दी गयी, कलक्टर को दी गयी है। तो हुआ क्या है कि जहां जहां भ्रष्ट कलक्टर हैं, उन्होंने इन सारे सरपंचों से हफ्ता मांगना चालू कर दिया है। जो जो सरपंच पैसा दे देते हैं उनके ख़िलाफ कुछ नहीं किया जाता। लेकिन जो पैसा देने से मना करते हैं उनके ख़िलाफ फर्ज़ी जांच चालू कर दी जाती है। फर्ज़ी जांच की धमकी देकर या उनके ख़िलाफ फर्ज़ी जांच शुरू करके उनसे गलत काम करवाने का दबाव डाला जाता है।

एक उदाहरण से समझते हैं कि आज पंचायती राज व्यवस्था में किस तरह राज्य सरकारें सरपंचों का ग़लत इस्तेमाल करती हैं। चूंकि सरपंच की गर्दन सरकारों के हाथ में होती है, तो सरपंच, मुखिया या प्रधान उनके गलत निर्देशों का भी पालन करने पर मजबूर होते हैं।

उत्तर प्रदेश में राज्य सरकार ने एक ठेकेदार को पूरे राज्य के सारे गांवों को सफाई का सामान मुहैया कराने को कह दिया। ठेली, फावड़ा, नाली साफ करने का तसला इत्यादि। और उस ठेकेदार को कह दिया कि हर सरपंच को ये दे आओ। अब वो ठेकेदार जा रहा है और हर सरपंच के घर के बाहर वो सामान फेंक देता है। बी डी ओ के यहां से सरपंच को फोन चला जाता है कि इसका भुगतान करा दीजिए। सरपंचों को भुगतान कराना पड़ता है, नहीं तो उनके ख़िलाफ कोई झूठी कार्रवाई शुरू कर दी जाएगी।

तो कागज़ों में ये दिखाया गया है कि सामान पंचायत ने खरीदा, लेकिन राज्य सरकार ने एक ठेकेदार को गैरक़ानूनी ढंग से वो सारा सामान सप्लाई करने के लिए आदेश दे दिये। और फोन के ऊपर हर सरपंच को ये कह दिया जाता है कि ''ये सामान देने आयेगा, इससे सामान ले लेना और इसका भुगतान करा देना''।

सर्व शिक्षा अभियान में भी यही हो रहा है। सर्व शिक्षा अभियान में सामान खरीदने का अधिकार पंचायतों को है। लेकिन वही दादागिरी यहां भी देखने को मिलती है। सर्व शिक्षा अभियान का पैसा हर गांव की ग्राम शिक्षा निधि में हस्तांतरित कर दिया जाता है। लेकिन उत्तर प्रदेश के कुछ ज़िलों में देखा गया कि ज़िला स्तर पर एक ठेकेदार को सारे गांवों के स्कूलों की बिजली व्यवस्था ठीक करने को कह दिया गया। वो गांव के स्कूल में जाता है। कुछ नहीं करता या घटिया काम करता है। घटिया माल सप्लाई करता है। और फिर हर गांव के सरपंच को फोन के ऊपर कह दिया जाता है कि इसका भुगतान करा दो। तो राज्य सरकारों और ज़िला स्तर के अधिकारियों की इस तरह की दादागिरी गांव के सरपंचों के ऊपर चल रही हैं।

पंचायत सचिव - पंचायत का या राज्य सरकार का :

क़ानून में ये लिखा है कि पंचायत सचिव या हमारे गांव के जितने कर्मचारी हैं उन सारे कर्मचारियों की नियुक्ति राज्य सरकार करेगी। पंचायत सचिव क्या काम करेगा इसका निर्देश भी राज्य सरकार देगी। बताइये, हमारे गांव की पंचायत के सचिव की नियुक्ति हम अच्छी करेंगे कि राज्य सरकार अच्छी करेगी? उसे क्या काम करने चाहिए, ये वहां की जनता को तय करना चाहिए कि राज्य सरकार को तय करना चाहिए? राज्य सरकार को क्या पता कि किस गांव में किस चीज़ की ज़रूरत है?

'बैकवर्ड रीजन ग्रांट फ़ंड' का किस्सा :

केन्द्र सरकार की पिछड़े इलाकों के लिए एक योजना है जिसे कहते हैं बैकवर्ड रीजन ग्रांट फ़ंड। इस योजना के तहत हमारे देश के सबसे पिछड़े ज़िलों को केन्द्र सरकार फ़ंड देती है। योजना में कहा गया है कि उन ज़िलों के सभी गांवों में ग्राम सभाओं के ज़रिए योजना बनाई जाएगी कि उस गांवों में लोगों की क्या ज़रूरते हैं? उस फ़ंड से वही प्रोजेक्ट किए जाएंगे जो ग्राम सभा में तय होंगे।

देश में लगभग 250 ऐसे ज़िले हैं जहां ये योजना चल रही है। हरियाणा में दो ज़िले हैं-सिरसा और महेंद्रगढ़- जहां ये योजना चल रही है। जब हम उन ज़िलों में गए तो हमें पता चला कि वहां तो ग्राम सभाएं हो ही नहीं रही हैं और बिना ग्राम सभाओं के इस फ़ंड का इस्तेमाल किया जा रहा है। तहकीकात करने पर पता चला कि इस फ़ंड का पैसा कलक्टर के अकाउंट में आता है। क़ानूनन यह प्रावधान है कि ग्राम सभाएं जो योजनाएं बनाकर भेजेंगी, कलक्टर को वो फ़ंड उसी के हिसाब से आबंटन करना होगा। लेकिन कलक्टर गांवों से प्रस्ताव मंगाने के बजाय अपनी मन मर्ज़ी से उस फ़ंड का इस्तेमाल कर रहे हैं।

जैसे, कलक्टर तय कर लेता है कि इन 100 गांवों में स्कूल बनेंगे। फिर वो एक ठेकेदार को बुला कर 100 गांवों में स्कूल बनाने को कह देता है। और उन 100 गांवों के सरपंचों को बुलाकर कह दिया जाता है कि आप सभी अपने अपने गांवों की ग्राम सभाओं के फर्ज़ी प्रस्ताव ले आइए कि आपके गांव की ग्राम सभा स्कूल बनवाना चाहती है।

कई बड़े-बड़े नेता भी कलक्टरों पर दबाव डाल कर बैकवर्ड रीजन ग्रांट फ़ंड से अपनी मनमर्ज़ी के कार्य करवा रहे हैं। जैसे, एक गांव में पता चला कि एक नेता की बहुत बड़ी खेती की ज़मीन है। उसने कलक्टर पर दबाव डाल कर अपनी ज़मीन के आसपास कई काम करवाए। अगर ग्राम सभाओं को ये निर्णय लेना होता तो वो कभी इस तरह का प्रस्ताव पारित नहीं करतीं।

सिरसा ज़िले के कुछ लड़कों ने 18 गांवों में प्रयास करके असली में ग्राम सभाएं कराईं और प्रस्ताव बना कर ऊपर भेजे। इस योजना में लिखा है कि ग्राम सभाएं प्रस्ताव बनाएंगी और कलक्टर को भेजेगी। कलक्टर उन योजनाओं को मंज़ूर करके फ़ंड आबंटन करेगा। इसके बावजूद सिरसा

ज़िले के कलक्टर ने एक साल से ज़्यादा बीत जाने के बाद भी आज तक इन 18 गांवों की ग्राम सभाओं द्वारा पारित किए गए प्रस्तावों को मंज़ूर ही नहीं किया है।

निष्कर्ष :

देशभर से ऐसे ढेरों उदाहरण दिए जा सकते हैं कि आज की पंचायती राज व्यवस्था किसी भी तरह से प्रशासन और राजनीति में लोगों की सीधी भागीदारी सुनिश्चित नहीं करती। लोगों को सीधे सत्ता देने के लिए राज्य सरकार, कलक्टर और सरपंच की ताकत छीन कर क़ानूनन निर्णय लेने की ताकत ग्राम सभाओं को देनी होगी।

❖❖❖

अन्य देशों के उदाहरण

हमने अन्य देशों की जनतांत्रिक व्यवस्था का भी अध्ययन किया- अमरीका में क्या होता है, ब्राज़ील में क्या होता है, स्विट्ज़रलैंड में क्या होता है? इनमें से कुछ सफल और बेहतर जनतांत्रिक ढांचे आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

अमरीका - वॉलमार्ट हार गया :

अमरीका में स्थानीय स्तर पर, शहर के स्तर पर, म्यूनिसिपालिटी के स्तर पर, काउंटी के स्तर पर कोई भी निर्णय बिना जनता की मर्ज़ी से नहीं होता। कई शहरों में हर सप्ताह मीटिंग होती है। जैसे 'मिडिल टाउन' एक शहर है। आप उसकी वेबसाईट पर चले जाइए तो पता चलता है कि वहां पर हर सोमवार शाम को पांच बजे जनता की मीटिंग होती है। जनता को टाउन हॉल में बुलाया जाता है। जनता आती है। और उस मीटिंग में सारे निर्णय जनता ही लेती है। उसी हिसाब से उस शहर की व्यवस्था चलती है।

जैसे, वॉलमार्ट अमरीका की एक कंपनी है। वो भारत आना चाहती है। बहुत लोगों को ये लगता है कि अगर वो भारत आयी तो भारत में बेरोज़गारी फैलेगी। अब बेरोज़गारी फैलेगी कि नहीं फैलेगी, ये अलग मुद्दा है। पर जब वो हमारे देश में आना चाह रही है तो हमारे देश में ये निर्णय कौन लेता है कि उसको यहां आने देना चाहिए या नहीं? ये निर्णय हमारे देश के केवल दो लोग लेते हैं- हमारे देश के प्रधानमंत्री और वाणिज्य मंत्री। हमसे तो पूछा तक नहीं जाता। जबकि रोज़गार हमारा जाएगा, हम बेरोज़गार हो जायेंगे, हम ग़रीबी में जीएंगे। पर फिर भी हम से नहीं पूछते।

वही कंपनी अमरीका के राज्य ओरेगॉन के एक शहर में दुकान खोलना चाहती थी। तो उस शहर के सारे लोगों के घर में एक नोटिस गया कि हमारे शहर में वॉलमार्ट दुकान खोलना चाहती है, हमें इसे खोलने देना चाहिए कि नहीं। आप इस दिन इतने बजे टाउन हॉल में आइए (इन सबको टाउन हॉल मीटिंग कहते हैं) और बताइये कि वॉलमार्ट को इजाज़त दें कि न दें। लोग टाउन हॉल में

इकट्ठे हुए और कहा कि ''हम वॉलमार्ट नहीं चाहते क्योंकि अगर वॉलमार्ट आयी तो यहां की सारी किराने की दुकानें बंद हो जाएंगी''। और वॉलमार्ट वहां पर दुकान नहीं खोल पायी। तो वह कंपनी अपने ही देश के एक शहर में दुकान नहीं खोल पायी लेकिन जब वो भारत आती है तो हमसे पूछा तक नहीं जाता।

ब्राज़ील - गलियों में तैयार होता बजट :

ब्राज़ील का उदाहरण लेते हैं। ब्राज़ील का एक शहर है पोर्तो एलेग्रे। उस शहर की 30-40 प्रतिशत आबादी झुग्गियों में रहती है। 1990 में पोर्तो एलेग्रे में वर्कस पार्टी की सरकार आयी। उन दिनों झुग्गी बस्तियों में न सड़कें थीं, न पीने का पानी था, न सीवर कनेक्शन थे, और काफ़ी लोग अनपढ़ थे। उस पार्टी ने आकर निर्णय लिया कि अब पोर्तो एलेग्रे का बजट नगर निगम के हॉल में नहीं बनेगा, कांउसिल में नहीं बनेगा- ये गली, मोहल्लों में बनेगा। उन्होंने पूरे पोर्तो एलेग्रे को छोटे छोटे मोहल्लों में बांट दिया। अब हर साल के शुरू में लोग अपने अपने मोहल्लों में मिलते हैं और हर आदमी अपनी मांग लेकर आता है। कोई कहता है हमारी सड़क खराब है सड़क बनवा दीजिए, कोई कहता है पीने का पानी नहीं है पाइप लाइन लगवा दीजिए, कोई कहता है टंकी लगवा दीजिए, कोई कहता है सीवर ठीक करवा दीजिए, कोई कहता है अध्यापकों की और नियुक्ति होनी चाहिए। हर आदमी अपनी अपनी मांग रखता है। पूरे शहर के लोगों की मांगों को इकट्ठा कर लिया जाता है और वो बजट बन जाता है। और बजट क्या होता है? बजट कोई बंद हॉल में या असेंबली में बैठ कर क्यों बने? बजट तो गली गली मोहल्ले मोहल्ले में बनना चाहिए। बजट बनाने का मतलब ही है कि सरकारी पैसा लोगों की ज़रूरत के हिसाब से कैसे इस्तेमाल किया जाये।

इस प्रयोग का नतीजा बड़ा अच्छा हुआ। उस पार्टी की सरकार 15 साल में चार चुनाव लगातार जीती है। कुछ साल पहले की विश्व बैंक रिर्पोट बताती है कि इस प्रयोग की वजह से काफ़ी विकास हुआ है। पहले वहां पीने को पानी नहीं था, अब 98 प्रतिशत घरों में पीने को पानी पहुंच गया है। 87 प्रतिशत घरों में सीवर कनेक्शन पहुंच गया। शत प्रतिशत लोग शिक्षित हो गये हैं। और जहां पहले भ्रष्टाचार का बोलबाला था, विश्व बैंक की रिर्पोट कहती है कि वहां अब भ्रष्टाचार काफ़ी कम हो गया है।

स्विट्ज़रलैंड - जनता के इशारे पर चलती संसद :

स्विट्ज़रलैंड का उदाहरण लें। स्विट्ज़रलैंड को दुनिया का सबसे बेहतरीन जनतंत्र माना गया है। क्योंकि वहां पर अगर पचास हज़ार लोग हस्ताक्षर कर कोई क़ानून की मांग करें तो उसको वहां पर विद्येयक के रूप में संसद में प्रस्तुत करना पड़ता है। और अगर एक लाख लोग हस्ताक्षर कर दें तो उसको उन्हें संसद में संविधान के संशोधन के विद्येयक के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है। तो लोगों का सीधे सीधे संविधान के ऊपर और वहां की क़ानून बनाने की प्रक्रिया पर नियंत्रण है।

मैं ये सोच रहा था कि हमारे देश में अगर पचास हज़ार लोग एक कागज़ पर हस्ताक्षर करके

हमारी संसद में भेजें तो मुझे नहीं लगता कि एक पावती भी आयेगी कि आपकी चिट्ठी मिल गयी।

तो हमने देखा कि कुछ अन्य देशों में किस तरह से जनता का व्यवस्था के ऊपर सीधा नियंत्रण है। लेकिन हमारे देश में हम लोग गिड़गिड़ाते रहते हैं और हमारा व्यवस्था के ऊपर किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं है।

❖❖❖

जनता का तिलक करो

आज हम पांच साल में एक बार वोट डालते हैं और अगले पांच साल तक हमारी ज़िंदगी का हर फैसला लेने का अधिकार कुछ लोगों के हाथ में सौंप देते हैं। उनके हाथ में इतनी सत्ता सौंप देते हैं कि या तो वो भ्रष्ट हो जाते हैं- हमें और हमारी ज़िंदगी को ही दांव पर लगा देते हैं- या सत्ता के मद में उनका दिमाग खराब हो जाता है।

इसी को बदलना होगा। अब हमें ऐसा करना होगा कि निर्णय सीधे जनता ले और उन निर्णयों पर अमल नेता और अधिकारी करें। यदि वो हमारे निर्णयों पर अमल न करें तो हम सीधे उन्हें हटा सकें। ये कैसे हो सकता है? जब हम ये बात करते हैं तो लोग कहते हैं कि जनता कैसे निर्णय ले सकती है। सौ करोड़ जनता कैसे निर्णय लेगी? ये नहीं हो सकता।

बिल्कुल हो सकता है। हमारे गांव में ग्राम सभाएं है। संविधान में लिखा है कि ग्राम सभाएं होंगी। ग्राम सभा का मतलब पंचायत नहीं होता। पंचायत होती है उस गांव के कुछ चुने हुए लोग-सरपंच या प्रधान या मुखिया और वार्ड सदस्य-उन सबको मिलाकर पंचायत बनती है। लेकिन ग्राम सभा का मतलब सारे गांव के लोगों की खुली बैठक। इसमें सारा गांव इकट्ठा होता है। सब लोग आते हैं। उस सारे गांव की मीटिंग को कहते हैं- ग्राम सभा।

सरकारी कर्मचारियों पर नियंत्रण हो :

गांव की सारी व्यवस्था, गांव के बारे में सारे निर्णय लेने का अधिकार सीधे सीधे ग्राम सभा को मिलना चाहिए। पंचायती राज और अन्य क़ानूनों में संशोधन करके यह व्यवस्था की जाए कि अगर हमारे सरकारी स्कूल में अध्यापक ठीक से न पढ़ाए, अध्यापक समय पर न आये तो ग्राम सभा उस अध्यापक की तनख्वाह रोक सके।

अगर सरकारी डॉक्टर ठीक से इलाज न करे, तो ग्राम सभा अपनी मीटिंग में उस डॉक्टर की तनख्वाह रोक सके। अगर राशन वाला ठीक से राशन न दे, राशन की चोरी करे, तो राशन वाले की

दुकान ग्राम सभा कैंसिल कर सके। थानेदार अगर हमारी रिपोर्ट न लिखे, थानेदार अगर फर्ज़ी मुकदमे हमारे ऊपर लगाये, तो गांव की ग्राम सभा उस थानेदार की तनख्वाह रोक सके।

आपको क्या लगता है? ऐसा करने से सुधार होगा? हमें तो लगता है ये सारे के सारे सुधर जायेंगे। अध्यापक ठीक से पढ़ाने लगेगा, थानेदार ठीक से अपना काम करेगा, डॉक्टर ठीक से इलाज करने लगेगा और राशन वाला ठीक से राशन देने लगेगा। तो सरकारी कर्मचारियों के ऊपर ग्राम सभा के ज़रिये सीधे-सीधे जनता का नियंत्रण होना चाहिए।

हमारे गांव के अध्यापक की नियुक्ति भी ग्राम सभा करे। अभी हम देखते हैं कि राज्य सरकारें दस हज़ार अध्यापकों की भर्ती एक साथ करती हैं और उसमें पैसा खाती हैं। जो अध्यापक रिश्वत देकर भर्ती होगा, वो बच्चों को क्या पढ़ायेगा?

सूचना अधिकार से पता चला है कि झारखंड के दसवीं कक्षा तक के अनेकों स्कूलों में एक भी अध्यापक नहीं है। जैसे वमनी उच्च विद्यालय केनुगा, सरायकेला, खरसावा में 310 बच्चें हैं पर एक भी अध्यापक नहीं है। सिरूम के विद्यालय में 435 बच्चों की दस कक्षाओं में केवल एक बंगला टीचर है। यह राज्य सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वो अध्यापकों की नियुक्ति करे। लोगों ने राज्य सरकार को कई बार लिखा पर कोई जवाब नहीं आया। तो क्या हमारे बच्चे राज्य सरकार की दया दृष्टि का इंतज़ार करते रहें? क्या हमारे लाखों करोड़ों बच्चों की ज़िंदगी के साथ खिलवाड़ नहीं हो रहा?

ये सिस्टम बंद करना पड़ेगा। जिन लोगों के बच्चे वहां पढ़ते हैं, वही गांव वाले उस अध्यापक की नियुक्ति करें, वही उसको निकालें। जो लोग सरकारी अस्पताल में इलाज कराने जाते हैं, वही सरकारी डॉक्टर की नियुक्ति करेंगे, और वही उसको निकालेंगे। सीधे सीधे व्यवस्था जनता के हाथ में देनी चाहिए। गांव के स्तर के सारे सरकारी कर्मचारियों को नियुक्त करने की, आदेश करने की, दंडित करने की और ज़रूरत पड़ने पर बर्ख़ास्त करने की ताकत सीधे ग्राम सभा के ज़रिए जनता के हाथ में होनी चाहिए।

इससे काफी फायदा होगा। आज राज्य सरकारें गांव में पढ़ाने के लिए शहर के लोगों को भर्ती कर लेती हैं। उन्हें 15000 रुपये महीना देती हैं। फिर भी वो लोग गांव में पढ़ाने नहीं जाते। उनमें से कुछ लोग तो गांव वालों के साथ बैठना भी इज्जत के ख़िलाफ समझते हैं।

यदि सीधे गांव के लोग अध्यापक को नियुक्त करेंगे तो उस गांव के पढ़े लिखे लोगों को भी रोज़गार मिलेगा। वो तो 5000 रुपये महीने में ही पढ़ा लेंगे। और अगर ठीक से नहीं पढ़ायेंगे तो लोग उन्हें दंडित भी कर सकते हैं।

क़ानून बदलकर यह व्यवस्था की जाए कि ज़िला और ब्लॉक स्तर तक किसी भी अधिकारी को आदेश देने और उसको ग्राम सभाओं में तलब करने का अधिकार उस इलाके की ग्राम सभाओं

के पास होना चाहिए। ज़िला या ब्लॉक स्तर के किसी भी अधिकारी को जनता निर्देश दे सके। कलक्टर तक को कह सके कि तुम्हें ऐसा करना है। और अगर वो न करे तो कलक्टर तक को तलब कर सके, एस. डी. एम. को तलब कर सके, तहसीलदार को तलब कर सके, बी डी ओ को तलब कर सके, राशन अधिकारी को तलब कर सके। और अगर ग्राम सभा के आदेश पर कोई अधिकारी हाज़िर न हो तो ग्राम सभा के पास उनको दंडित करने की ताकत भी होनी चाहिए।

तो ब्लॉक व ज़िला सतर के अधिकारियों को सीधे आदेश देने, तलब करने और अगर वो आदेश न मानें तो उन्हें दंडित करने का अधिकार ग्राम सभाओं को हो। ब्लॉक व ज़िला स्तर के कर्मचारियों की नियुक्ति व बर्खास्तगी में भी ब्लॉक पंचायत व ज़िला पंचायत के माध्यम से ग्राम सभाएं हस्तक्षेप कर सकेंगी।

राज्य स्तर तक के किसी भी अधिकारी से अपने गांव से संबंधित कोई भी सूचना मांगने का अधिकार ग्राम सभा के पास होना चाहिए। क्योंकि गांव के बारे में अजीब अजीब किस्म की योजनाएं बनती हैं। तो गांव के लोगों को ये अधिकार होने चाहिए कि उनके बारे में किस किस्म के निर्णय लिए जा रहे हैं, उनके बारे में क्या योजना बनाई जा रही है, ये सारी सूचना मांगने का अधिकार गांव की ग्राम सभा को होना चाहिए।

सरकारी पैसों पर नियंत्रण हो :

केन्द्र या राज्य सरकारों से जितना पैसा आता है वो सारा का सारा पैसा मुक्त फ़ंड (बिना किसी योजना में बंधे) के रूप में आना चाहिए। हमें कोई सरकारी योजना नहीं चाहिए, हमें वृद्धावस्था पेंशन नहीं चाहिए, विधवा पेंशन नहीं चाहिए, नरेगा नहीं चाहिए, राशन नहीं चाहिए, इंदिरा आवास योजना नहीं चाहिए, हमें कोई योजना नहीं चाहिए।

अगर आज आप एक गांव में पांच करोड़ रुपये की योजनाएं भेज रहे हैं तो आप चाहे तीन करोड़ रुपये ही भेज दीजिए। लेकिन वो सारा पैसा मुक्त फ़ंड हो, 'अनटाइड' फ़ंड हो। गांव के लोग ग्राम सभा में बैठें और वो तय करें कि उन्हें इसमें से कितना सिंचाई पर खर्च करना है, कितना शिक्षा पर खर्च करना है, कितना स्वास्थ्य पर खर्च करना है। गांव की जनता तय करेगी कि कितना पैसा कहां कहां खर्च करना है।

उसी तरह से गांव की जनता ही तय करेगी कि हमारे गांव में किसे बी. पी. एल. माना जायेगा। उसका पैमाना क्या होगा? हांगकांग में जिस व्यक्ति के पास एंयरकंडीशनर नहीं होता, उसको बीपीएल माना जाता है। दिल्ली में एक रिक्शा वाला भी 5000 रुपये महीने से ज़्यादा कमाता है। लेकिन इतना कमाने के बावजूद भी दो जून की रोटी ठीक से नहीं खा पाता। झुग्गी में कीड़े मकोड़ों की तरह रहता है। पर 5000 रुपये महीना गांव के किसी परिवार के लिए बहुत होता है।

पूरे देश के लिए दिल्ली में बैठकर ग़रीबी का एक ही पैमाना बना देना बिल्कुल ग़लत है।

दिल्ली के लोगों के लिए जो बीपीएल है, कालाहांडी के लोगों के लिए बीपीएल का मापदंड बिल्कुल अलग हो सकता है।

गांव का समाज बैठेगा। गांव का समाज यह तय करेगा कि इस व्यक्ति के पास रहने को घर नहीं है तो इसको हम घर देंगें। समाज उसको ग्राम सभा के फ़ंड से घर देगा। लोगों को किसी इंदिरा आवास योजना का मुंह नहीं देखना पड़ेगा। आज इंदिरा आवास योजना के नाम पर साल में एक गांव में सरकार दो घर का पैसा भेजती है। रिश्वत खाकर वो ऐसे लोगों को मिल जाते हैं जिन्हें उसकी ज़रूरत नहीं होती। अब गांव के लोग तय करेंगे कि उनके गांव में वाकई कौन बेघर हैं। उन सभी को घर दिया जाए। किसी व्यक्ति के पास खाने को नहीं हैं, कोई साधन नहीं हैं कमाने का, उसको ग्राम सभा कुछ दिनों के लिए राशन दे सकती है ताकि वो भूखे न मरे। पूरी ग्राम सभा का ये फर्ज़ होगा कि उस गांव में कोई भूखा न मरे। उस गांव में हर आदमी के सिर पर छत हो। उस गांव में हर बच्चा स्कूल जाये। उस गांव में हर व्यक्ति के तन पर कपड़े हों। ये पूरा समाज सुनिश्चित करेगा, ये पूरी ग्राम सभा सुनिश्चित करेगी। उस पैसे को उसी तरह से खर्च किया जाएगा।

इसी तरह से, मान लीजिए, कोई रोज़गार करना चाहता है, कोई खेती करना चाहता है। उसे कर्ज़ा चाहिए तो आज साहूकारों के चंगुल में फंस कर बेचारे की दुर्गति बन जाती है। सौ-सौ प्रतिशत ब्याज़ देना पड़ता है उनको। अब वो ग्राम सभा से कर्ज़ा ले सकेगा। अगर ग्राम सभा को मुक्त फ़ंड मिलेंगे तो वो किसी को भी कर्ज़ा दे सकेगी।

देश के कई इलाकों में आज किसान आत्महत्या कर रहे हैं। ग्राम सभाओं को मुक्त फ़ंड देने से उनकी आत्महत्याएं भी बंद होंगी। क्योंकि अगर कोई किसान आत्महत्या के कगार पर पहुंचता है तो ग्राम सभा बैठकर उसको कर्ज़ा दे देगी।

तीसरी चीज़, जब फसल निकलती है तो कई बार किसानों के पास फसल रखने के लिए जगह नहीं होती है। फसल निकलने वाली होती है और बारिश आ जाती है और सारी फसल बर्बाद हो जाती है। अगर गांव के लोग फसलों के रखने के लिए गोदाम बनाना चाहें तो वो ग्राम सभा के मुक्त फ़ंड से बना सकेंगे।

मान लीजिए गांव के लोग फैक्टरी लगाना चाहें तो उस पैसे से मिल भी लगा सकेंगे। चेन्नई के पास एक गांव है कुटुम्बाकम। वहां के सरपंच हैं इलेंगो। उन्होंने ज़बरदस्त काम किया है। वो पहले कैमिकल इंजीनियर थे और अपनी नौकरी छोड़कर 15 साल पहले कुटुम्बाकम गांव के सरपंच बन गये। उनके गांव में एक हज़ार परिवार हैं। उन्होंने अनुमान लगाया है कि उनके गांव में एक महीने में लगभग 50 लाख रुपये के सामान की खपत होती है। लोग खाना खाते हैं, साबुन इस्तेमाल करते हैं, तेल इस्तेमाल करते हैं, किस्म किस्म की चीज़ें इस्तेमाल करते हैं। इलेंगो का ये कहना है कि इनमें से 80 प्रतिशत चीज़ें गांव में ही बन सकती हैं। साबुन गांव में बन सकता है। धान से जो चावल बनाया जाता है, वो गांव में बन सकता है। तेल गांव में बन सकता है। ईंट गांव में बन सकती है। गांव

के इस्तेमाल की 80 प्रतिशत चीज़ें गांव में ही बन सकती हैं। तो क्यों न ये चीज़ें गांव में ही बनाई जायं। मुक्त फ़ंड आयेगा तो लोग ग्राम सभा के फ़ंड से मिल, उद्योग आदि लगा सकेंगें। अगर ये सारी चीज़ें लोग अपने आप गांव में ही बनाने लग जायें तो बेरोज़गारी और ग़रीबी बहुत जल्द दूर हो जायेगी।

पुणे के पास एक ब्लॉक के कई गांवों में पिछले कई वर्षों से एक बहुत ही सफल प्रयास चल रहा है। इन गांवों में पहले हर वर्ष जून से सितंबर तक लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ता था। इस दौरान या तो लोग शहरों की तरफ भागते थे या साहूकार से 150 प्रतिशत की ब्याज़ दर पर कर्ज़ा लेते थे। साहूकार से यदि 100 किलो अनाज लेते थे तो चार महीने के बाद 150 किलो ब्याज़ चुकाना पड़ता था। इसके बावजूद जब भी बुलाया जाता, अपनी खेती छोड़कर साहूकार के घर और खेतों में मुफ़्त में काम करने जाना पड़ता था। इससे अपनी खेती पर भी काफ़ी बुरा असर पड़ता था। अपने खेत की सारी जलावन लकड़ी भी साहूकार को मुफ्त में देनी पड़ती थी।

एक बार एक संस्था ने वहां अनाज का बैंक शुरू किया। वहीं के लोगों की एक समिति बनाकर उस समिति को पूरे गांव की ज़रूरत के बराबर अनाज कर्ज़ पर दे दिया। यह समिति उस कर्जे से गांव के ज़रूरतमंद परिवारों को कर्ज़ा देती है। चार महीने बाद किसी भी परिवार को 100 किलो के बदले 125 किलो अनाज वापिस करना पड़ता है। और साहूकार के बेगार से छुट्टी। चार साल में एक गांव, संस्था से लिया हुआ कर्ज़ा वापस कर देता है। और उसके बाद गांव में ही हर वर्ष समिति के पास अनाज का भंडार जमा होता जाता है। आस पास के लगभग 150 गांवों में इस तरह का प्रयास सफलतापूर्वक चल रहा है। अगर मुक्त फ़ंड आयेगा तो लोग अपने अपने गांव में इस तरह का अनाज बैंक भी शुरू कर पायेंगे। इससे भूख और साहूकार, दोनों के चंगुल से छुटकारा मिलेगा।

सारी सरकारी योजनाएं बंद करके गांव में सीधे मुक्त फ़ंड भेजना-इस एक विचार को क्रियान्वित करने से देश में क्रांति आ सकती है। बेरोज़गारी दूर हो सकती है। ग़रीबी दूर हो सकती है।

क्या ग्राम सभाओं को ताकत देने से भ्रष्टाचार बढ़ेगा?

कुछ लोगों का मानना है कि अगर सीधे-सीधे ग्राम सभाओं को मुक्त फ़ंड जायेगा तो उसका ग़लत इस्तेमाल हो सकता है। तो हमने पूछा कि कैसे ग़लत इस्तेमाल हो सकता है? तो कुछ लोगों ने कहा कि मान लीजिए ग्राम सभा को तीन करोड़ रुपया ऊपर से आया है और मान लीजिए ग्राम सभा में बैठ कर सभी लोग कहें कि ''हम तीन करोड़ रुपये का कुछ नहीं करेगें, हम आपस में बांट कर खायेंगे''। तो इसमें क्या बुरा है? ठीक है, बांट कर खा लेने दो। अगर सारा गांव बैठकर ये निर्णय लेता है कि हम इस पैसे को आपस में बांटकर खायेंगे। तो खा लेने दो। अभी उस पैसे को कौन खाता है? अधिकारी खाते हैं, नेता खाते हैं, बीडीओ खाता है, तहसीलदार खाता है, कलक्टर खाता है।

अगर गांव के सारे लोग मिलकर उस सारे पैसे को बांट लें तो क्या हर्ज़ है? सीधे-सीधे जनता तक तो पहुंचेगा पैसा।

लेकिन गांव वाले ऐसा कतई नहीं करेगें। आपको क्या लगता है? एक बच्चे को उसके मां बाप ज़्यादा प्यार करते हैं या एक शिक्षा सचिव ज़्यादा प्यार करता है? निश्चित तौर पर उसके मां बाप ज़्यादा प्यार करते हैं। तो क्या आप सोचते हैं कि अगर उसके मां बाप ग्राम सभा में बैठेंगे तो वो ये कहेंगे कि ''मेरे बच्चे के लिए स्कूल न बनवाया जाय'', क्या वो कहेंगे कि ''मेरे बच्चे के लिए स्वास्थ्य केंद्र न बनाया जाय'', क्या वो कहेंगे कि ''ये सब चीज़ें नहीं होनी चाहिए और सब पैसा हम बांट कर खा जाऐं?'' ऐसा कतई नहीं होने वाला। सब गांव वालों को अपनी ज़िंदगी के हर पहलू की चिंता है। वो शिक्षा पर भी पैसा खर्च करेंगे, स्वास्थ्य पर भी पैसा खर्च करेंगे, वो अपनी सड़कों पर भी पैसा खर्च करेंगें। तो ये सोचना कि इस पैसे को वो सारे बांट कर खा जाएंगे एकदम कोरी कल्पना है।

दूसरा दुरुपयोग ये हो सकता है कि सरपंच ग्राम सभा ही न बुलाए, गांव के लोगों के झूठे हस्ताक्षर कर ले और सारा का सारा मुक्त फ़ंड का पैसा खा जाय। ये बिल्कुल हो सकता है। लेकिन आज भी तो यही हो रहा है। भई गांव में पैसा मुक्त फ़ंड में आये या बिना मुक्त फ़ंड में आये। अगर भ्रष्ट सरपंच होगा तो वो तो पैसे खा ही लेगा। अगर योजनाओं में पैसा आता है तो भी वो पैसा खाता है। अगर बिना योजनाओं के पैसा आयेगा तो भी वो पैसा खाएगा। तो सरपंच को तो पैसा खाना ही है। कुछ लोगों का ये मानना है कि ''नहीं आज जब योजनाओं में ये पैसा आ रहा है तो कम से कम कुछ लोगों को तो पैसा मिल रहा है''। ये बात बिल्कुल ग़लत है। किसी गांव में कितना पैसा लोगों तक पहुंच रहा है ये इस बात पर निर्भर करता है कि वहां का सरपंच कितना भ्रष्ट है, और वहां की जनता कितनी जागरुक है। जनता जहां-जहां आवाज़ उठाती है वहां जनता तक पैसा ज़्यादा पहुंचता है। जहां-जहां जनता आवाज़ उठायेगी वहां पर मुक्त फ़ंड भी ज़्यादा पहुंचेगा। जहां-जहां सरपंच कम भ्रष्ट होगा, वहां पर मुक्त फ़ंड ज़्यादा पहुंचेगा। आज जब योजनाओं में पैसा जाता है तो उस पैसे की चोरी रोकने में उस योजना से लाभान्वित होने वाले लोगों की ही रुचि होती है। बाकी जनता को उससे कोई मतलब नहीं होता। जैसे इंदिरा आवास की योजना मे एक गांव में मान लीजिए तीन मकान का पैसा आये तो उसमें कुछ ही लोगों की रुचि होती है। यदि सरपंच तीनों का पैसा चोरी कर ले या तीनों लोगों से रिश्वत ले ले तो गांव में और किसी को उससे कोई मतलब नहीं है। कोई आवाज़ नहीं उठाता। केवल वो तीन लोग उसकी वजह से पीड़ित होते हैं। लेकिन मुक्त फ़ंड जाएगा तो उस पूरे पैसे पर पूरे के पूरे गांव के लोगों की नज़र होगी। सारे गांव के लोग उसमें दखल देंगे। तो हमारा ये मानना है कि मुक्त फ़ंड से भ्रष्टाचार के ख़िलाफ लड़ने में पूरे गांव की जनता एकजुट होगी और भ्रष्टाचार में ज़रूर कमी आयेगी। क्योंकि पूरा गांव उस पैसे के इस्तेमाल में दखल देगा। दूसरे, आज भ्रष्ट सरपंच या भ्रष्ट अधिकारी के ख़िलाफ जनता कुछ नहीं कर सकती। स्वराज की व्यवस्था में ग्राम सभा उन्हें सीधे दंडित कर सकेगी और ज़रूरत पड़ने पर

निकाल भी सकेगी।

क़ानूनों और नीतियों पर जनता की राय ली जाए :

हमारे देश के संविधान के मुताबिक विधायक और सांसद ब्लॉक स्तर और ज़िला स्तर की पंचायतों के पदेन सदस्य होते हैं। लेकिन संविधान या क़ानून में यहाँ उनको कोई ज़िम्मेदारी नहीं दी गयी है। हमारे हिसाब से उनकी ये ड्यूटी होनी चाहिए कि अगर हमारी संसद में या हमारी विधान सभा में कोई भी क़ानून प्रस्तुत किया जाता है, तो वो उस क़ानून की एक प्रति लेकर ब्लॉक स्तर पर और ज़िला स्तर पर आयेंगे। और उस क्षेत्र की सारी ग्राम सभाओं में उस क़ानून की प्रतियां बांटी जाएंगी और वहां की ग्राम सभाओं से वो पूछेंगे कि ''आपको इस क़ानून के बारे में क्या कहना है?'' जनता उसके बारे में चर्चा करेगी। और जो विचार सभी ग्राम सभाएं मिलकर प्रस्तुत करेंगी, वही बात उस सांसद या विधायक को संसद या विधान सभा में रखनी पड़ेगी। उसे कहना पड़ेगा कि ये मेरे क्षेत्र के लोगों की राय है, वही राय उसे वहां रखनी होगी।

हम आज अपने विधायक और सांसद को चुनकर भेजते हैं। हमने उसको वोट दिया है। वो हमारा प्रतिनिधि है। वो पहले जनता का प्रतिनिधि है बाद में कांग्रेस या भाजपा का या किसी अन्य पार्टी का प्रतिनिधि है। लेकिन क़ानूनों और सरकारी नीतियों पर अपना मत रखने के पहले वो हमसे पूछते ही नहीं हैं। अभी क्या होता है? सोनिया गांधी कहती है तो सारे कांग्रेस वाले उसी के हिसाब से वोटिंग करते हैं। आडवाणी या नितिन गडकरी कहते हैं तो उसी हिसाब से सारे भाजपा वाले वोटिंग करते हैं। मायावती कहती है तो उसकी पार्टी के सारे विधायक उसी के हिसाब से वोटिंग करते हैं। हमारे द्वारा चुने हुए लोगों पर पार्टियों की चलती है, जनता की नहीं चलती।

'हाई कमांड' की इस दादागिरी को बंद करना होगा। जो जनता कहेगी वही हमारे विधायक को या सांसद को विधान सभा में या संसद मे रखना पड़ेगा। इससे संसद और विधान सभाओं में बनने वाले क़ानूनों पर सीधे जनता का नियंत्रण बनेगा।

फिर संसद को 'न्यूक्लियर लायबिलिटी' जैसे विद्येयक पास कराना मुश्किल हो जायेगा। फिर संसद को देशी विदेशी कंपनियों या विदेशी सरकारों के दबाव में आकर क़ानून बनाना मुश्किल हो जायेगा। फिर जो जनता चाहेगी, हमारी संसद और विधान सभाओं को वही क़ानून बनाने पड़ेंगे।

प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण हो :

जल, जंगल, ज़मीन, ख़निज और अन्य प्राकृतिक संसाधन- इनके ऊपर सीधे-सीधे नियंत्रण जनता का होना चाहिए।

ज़मीन

जैसा पहले बताया गया कि आज अगर कोई कंपनी किसी गांव में फैक्ट्री लगाना चाहती है तो

उस फैक्ट्री को लगाने के लिए उसको राज्य सरकार से इजाज़त लेनी पड़ती है। राज्य सरकार में कोई मंत्री या अफ़सर पैसा खाते हैं और वो गांव वालों की ज़मीन को पैसे वालों को बेच देते हैं। किसानों से पूछा भी नहीं जाता कि तुम खेती करना चाहते हो या ज़मीन देना चाहते हो।

क़ानून में बदलाव होने चाहिए कि अगर कोई कंपनी फैक्ट्री लगाना चाहेगी तो उसको अपना प्रस्ताव राज्य सरकार की बजाय ग्राम सभा में रखना पड़ेगा। उसको अब राज्य सरकार से अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं पड़नी चाहिए। वो उस गांव की ग्राम सभा से अनुमति लेगी। जो गांव प्रभावित हो रहे हैं, जहां जहां से उसे ज़मीन चाहिए, वहां की सारी पंचायतों में वो पंचायत सचिव के पास आवदेन करेगी। वो पंचायत सचिव ग्राम सभा की मीटिंग में उस प्रस्ताव को लोगों के सामने रखेगा। जनता निर्णय लेगी कि हम अपनी ज़मीन देना चाहते हैं कि नहीं देना चाहते और अगर देना चाहते हैं तो किन शर्तों पर देना चाहते हैं। वो शर्तें भी ग्राम सभा ही तय करेगी। अगर उस कंपनी को वह शर्तें मंज़ूर हैं तो वह ज़मीन ले सकती है।

इसी तरह, यदि राज्य सरकार या केंद्र सरकार किसी गांव की ज़मीन अधिग्रहण करना चाहती है तो उसे उसके लिए वहां की पंचायत में आवेदन करना पड़ेगा और सीधे ग्राम सभा से बात करनी होगी।

कई गांव ऐसे हैं जहां 10 प्रतिशत या 15 प्रतिशत लोगों के पास ही ज़मीन होती है। बाकी सारे के सारे लोग तो उस ज़मीन पर मज़दूरी करते हैं । ज़मीन बेचने की बात आती है तो पैसा केवल ज़मीन वाले को मिलता है। जो लोग ज़मीन पर मज़दूरी करते थे उनको कुछ भी नहीं मिलता। तो ग्राम सभा अधिग्रहण के बारे में कोई फैसला करने के पहले उन लोगों के हितों को भी ध्यान में रखेगी जिन लोगों के पास ज़मीन नहीं है, जो मज़दूरी करते हैं।

तो सीधे-सीधे गांव की ज़मीन पर ग्राम सभाओं का नियंत्रण होना चाहिए।

खदान

छोटे मोटे ख़निजों के ऊपर सीधे ग्राम सभाओं की मिल्कियत हो। बड़े ख़निजों पर मिल्कियत किस की हो? हमारे देश के ख़निजों पर यकीनन पूरे देश का अधिकार होना चाहिए- इस पर किसी को आपत्ति नहीं होगी। लेकिन इनका व्यापक जनहित में इस्तेमाल हो, यह कैसे सुनिश्चित किया जाए- यह काफ़ी पेचीदा प्रश्न है। आज खदानों का परमिट देने का अधिकार राज्य और केंद्र सरकारों के पास है। इन्होंने इस अधिकार का ग़लत इस्तेमाल किया है और रिश्वत खाकर खदानों को औने पौने दामों में कंपनियों को बेच रहें हैं।

तो क्या खदानों के परमिट देने का अधिकार वहां की ग्राम सभाओं को दिया जाए? कुछ लोगों का कहना है कि खनन करने वाली ये कंपनियां इतनी शक्तिशाली हैं कि इनके लिए एक गांव के

लोगों पर तरह-तरह के दबाव डालकर और भारी प्रलोभन देकर उनको खरीदना बड़ा आसान है।

इसका समाधान शायद बीच के रास्ते का होगा। हमारे देश के ख़निज कैसे इस्तेमाल किये जाएं, कितने निकाले जाएं, कितने निर्यात किये जाएं- ऐसी राष्ट्रीय नीति देश भर की सभी ग्राम सभाओं में चर्चा के बाद बने। उसी नीति के मुताबिक अपने गांव, ब्लॉक या ज़िले के ख़निजों का परमिट देने का निर्णय उससे प्रभावित होने वाली सभी गांवों की ग्राम सभाओं के द्वारा मिलकर लिया जाए।

जंगल

जंगल के लघु उत्पादों पर सीधे ग्राम सभा की मिल्कियत हो। टिंबर और बांस का ठेका किसी भी ठेकेदार को वहां की ग्राम सभाओं की मंज़ूरी के बिना न दिया जाए। ग्राम सभाएं उसकी शर्तें भी तय करें।

जल

गांव की सीमा में पड़ने वाले सभी जल स्त्रोतों पर वहां की ग्राम सभा की मिल्कियत हो। जल के बड़े स्त्रोत जैसे नदी आदि के बारे में निर्णय उससे प्रभावित सभी ग्राम सभाओं की मंज़ूरी के बिना न लिये जायें।

सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच कार्य विभाजन हो :

सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच कार्यों का, सरकारी संपत्ति का और सरकारी संस्थाओं का विभाजन करना होगा। अभी राज्य और केंद्र सरकारों के बीच तो ये विभाजन हो गया है पर राज्य सरकार और पंचायतों के विभिन्न स्तरों के बीच ये विभाजन नहीं हुआ है।

गांव के स्तर के जितने निर्णय हैं वो सारे के सारे निर्णय ग्राम सभाओं में लिए जायें। सबसे पहले गांव के लोग बैठकर निर्णय लें कि उनके गांव में सीधे कौन कौन से कार्य किये जा सकते हैं? कौन कौन सी सरकारी संपत्ति जैसे सड़कें, नालियां इत्यादि पूरी उनके गांव में ही पड़ती हैं? कौन कौन सी सरकारी संस्थाएं केवल उनके गांव के लोगों को सेवा देती हैं? जैसे कौन सा स्कूल केवल उसी गांव के बच्चों को पढ़ाता है? ऐसे सभी कार्य, सरकारी संपत्ति और संस्थाऐं क़ानून बनाकर उस गांव की ग्राम सभा को हस्तांतरित कर दिये जायें। इन सभी कार्यों को करने, संपत्ति के रख रखाव और संस्थाओं को चलाने के लिए जो फ़ंड और कर्मचारी चाहिए, वो वहां की पंचायत को हस्तांतरित कर दिये जायें।

सबसे पहले हर गांव ऐसी लिस्ट बनाए। उसके बाद हर ब्लॉक ऐसे कार्यों, संपत्ति और संस्थाओं की लिस्ट बनाए जो दो या दो से अधिक गांवों से संबंधित हों। उसी तरह से जो कार्य, संपत्ति और संस्थाएं दो या दो से अधिक ब्लॉकों से संबंधित हों, उन्हें ज़िला स्तर की लिस्ट में डाला

जाये और जो दो या दो से अधिक ज़िलों से संबंधित हों उन्हें राज्य स्तर की लिस्ट में डाला जाये। किसी भी कार्य, संपत्ति और संस्था के रखरखाव या उसे चलाने से संबंधित सारा पैसा और सभी कर्मचारियों पर पूर्ण नियंत्रण उस स्तर को हस्तांतरित किया जाये जिसके ज़िम्मे वो आई हैं। यदि दो गांवों के बीच किसी कार्य, संपत्ति या संस्था को लेकर विवाद होता है, तो उसे ब्लॉक स्तर पर निपटाया जाये। ब्लॉक स्तर के विवादों को ज़िला स्तर पर और ज़िला स्तर के विवादों को राज्य स्तर पर निपटाया जाये।

स्वराज की व्यवस्था में निर्णय कैसे लिये जायेंगे?

एक ब्लॉक के सभी गांवों के प्रधानों को मिलाकर ब्लॉक पंचायत बनेगी। एक ज़िले के सभी ब्लॉकों के अध्यक्षों को मिलाकर ज़िला पंचायत बनेगी।

अगर ऐसा कोई निर्णय है जो तीन या चार गांवों को प्रभावित करता है, जैसे, मान लीजिए एक सड़क बन रही है जो चार गांवों से होकर गुज़रती है। ऐसी स्थिति में निर्णय ब्लॉक स्तर पर लिए जाएंगे। लेकिन ब्लॉक स्तर पर जो भी निर्णय लिया जाएगा, तो जो उस निर्णय से प्रभावित गांव हैं, उनकी ग्राम सभाओं से पहले पूछा जायेगा कि उनको इस बारे में क्या कहना है। उन गांवों की अनुमति और उन ग्राम सभाओं की सहमति के बिना वो निर्णय ब्लॉक स्तर पर नहीं लिये जाएंगे। उसी तरह से मान लीजिए तीन या चार ब्लॉक के बारे में कोई निर्णय लेना है तो वो निर्णय ज़िला स्तर पर लिया जाएगा। अगर तीन या चार ज़िलों के बारे में कोई निर्णय लेना है तो वो निर्णय राज्य स्तर पर लिया जाएगा। ज़िला स्तर पर भी कोई निर्णय उस निर्णय से प्रभावित गांवों की सहमति या अनुमति के बिना नहीं लिया जाएगा। प्रभावित सभी ग्राम सभाओं से पहले अनुमति ली जाएगी। उनके विचार जाने जाएंगे। उसी के बाद कोई निर्णय लिया जाएगा।

राज्य स्तर पर कोई भी काम करने से पहले सरकारों को ग्राम सभाओं से अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं होगी। लेकिन किसी भी मुद्दे पर ग्राम सभाएं अपनी बात रखने के लिए सक्षम होंगी। अगर किसी मुद्दे पर उस राज्य की 5 प्रतिशत से ज़्यादा ग्राम सभाएं कोई प्रस्ताव पारित करती हैं, तो राज्य सरकार को वह प्रस्ताव सारी ग्राम सभाओं के पास भेजना पड़ेगा। और 50 प्रतिशत से ज़्यादा ग्राम सभाएं अगर उस प्रस्ताव को अनुमोदन कर देती हैं तो राज्य सरकार को वो प्रस्ताव पालन करना पड़ेगा, चाहे इसके लिए क़ानून ही क्यों न बदलने पड़ें।

भारतीय राजनीति पर इसका असर :

जिस दिन इस देश के सारे गांवों में ग्राम सभाएं होने लग गयीं तो इससे देश की संसद पर भी सीधे-सीधे ग्राम सभाओं का नियंत्रण होगा। तो एक तरह से इस देश की राजनीति के ऊपर सीधे-सीधे लोगों का नियंत्रण होगा। इस देश की राजनीति के ऊपर भ्रष्ट पार्टियों का, भ्रष्ट नेताओं का, अपराधियों का जो आज पूरी तरह से नियंत्रण बन गया है, वो कमज़ोर होगा। और सीधे-सीधे

इस देश की राजनीति के ऊपर, इस देश की सत्ता के ऊपर लोगों का नियंत्रण बनेगा। ताकि विकास हो सके, ग़रीबी दूर हो सके, बेरोज़गारी दूर हो सके।

इस तरह जब सीधे सत्ता जनता के हाथ में आयेगी, हमें लगता है तभी इस देश में जनतंत्र आएगा। अगर ऐसा होता है तो शिक्षा सुधरेगी, स्वास्थ्य सुधरेगा, सड़कें बनेंगी, पानी आयेगा, बिजली मिलेगी, बेरोज़गारी दूर होगी, ग़रीबी दूर होगी और तभी नक्सलवाद भी दूर होगा।

पंचायती राज और अन्य क़ानूनों में व्यापक फेरबदल की ज़रूरत :

इस पुस्तक के अंत में कई सुझाव दिये गये हैं, वो सभी सुझाव राज्य एवं केंद्र सरकारें अपने स्तर पर पंचायती राज क़ानून और अन्य क़ानून संशोधित करके लागू कर सकती हैं। इनके लिए संविधान के संशोधन की ज़रूरत नहीं है।

❖❖❖

स्वराज के स्वदेशी टापू

प्राचीन भारत में जनता शासकीय निर्णय लेती थी। आधुनिक समय में भी ऐसा ही कई देशों में हो रहा है, ये बातें अधिकतर लोग जानते हैं। क्या वर्तमान समय में भारत में भी इसके कोई उदाहरण हैं, इस बारे में लोगों की जानकारी बहुत कम है। सबको लगता है कि यह सब अपने देश में संभव नहीं। लेकिन यह धारणा गलत है। देश के विभिन्न इलाकों में स्थानीय नेतृत्व के प्रयास से प्रत्यक्ष लोकतंत्र के कई सफल प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों से स्थानीय शासन में कैसे गुणात्मक सुधार आया, आइए उसकी कुछ बानगी देखते हैं:

महाराष्ट्र का हिवरे बाज़ार गांव :

हिवरे बाज़ार पुणे से 100 किमी. दूर, अहमदनगर ज़िले में बसा एक गांव है। इस गांव में 1972 से 1989 तक ढेरों अकाल पड़े। उन अकालों ने वहां के लोगों की कमर तोड़ दी। लोग गांव छोड़ छोड़ कर पुणे और बम्बई भागने लगे। 90 प्रतिशत लोग ग़रीबी रेखा के नीचे चले गये। गांव में इतना बुरा हाल था कि हर घर में शराब बनती थी। हर घर में शराब पी जाती थी। लोग अशिक्षित थे, ग़रीब थे। इतनी गुटबाजी थी कि कई हत्याएं हो चुकी थी। लगभग हर सप्ताह पुलिस आयी रहती थी। हर तरह की बुराई थी उस गांव में।

1989 में वहां के 20-30 लड़के इकट्ठे हुए। उन्होंने तय किया कि वह अपने गांव को बदलेंगे। गांव की ऐसी व्यवस्था नहीं चल सकती। उन्होंने अपने में से एक लड़के को चुना। उसका नाम था पोपट राव पवार। उस लड़के को कहा कि तुम हमारे गांव के सरपंच बन जाओ। वो लड़का बम्बई में एम. कॉम. की पढ़ाई कर रहा था। उसको बम्बई से वापस बुलाया। गांव में जितने गुट थे, लड़के उन सब गुटों के बड़े बुजुर्गों के पास गये। सबको हाथ जोड़कर कहा कि इस लड़के को एक साल के लिए सरपंच बना दीजिए, हम गांव की व्यवस्था बदल देंगे। वो सारे बड़े बुजुर्ग काफी हंसे इन लड़कों पर। फिर भी सब मान गये उसको एक साल के लिए सरपंच बनाने के लिए।

उस लड़के ने एक ही निर्णय लिया- ''मैं जो काम करूंगा उसके बारे में सारे गांव के साथ मिल कर निर्णय लूँगा। कोई भी निर्णय मैं खुद नही लूँगा''। सरकारी क़ानून के मुताबिक साल में केवल दो ग्राम सभाएं होनी होती हैं- 15 अगस्त और 26 जनवरी को। वो महीने में चार-चार ग्राम सभाएं कराने लगा। कोई भी समस्या होती थी तो सारे गांव को इकट्ठा कर लेता था। और उनसे पूछता था कि बताइये क्या समस्या है और इसका कैसे समाधान करें?

इसके नतीजे चमत्कारिक हुए। 1989 में उस गांव में प्रति व्यक्ति औसत सालाना आय 840 रुपये थी। आज प्रति व्यक्ति सालाना आय 28000 रुपये है। 28000 रुपये का मतलब है कि अगर किसी परिवार में पांच लोग हों तो उस परिवार की सालाना आय लगभग डेढ़ लाख रुपये हो गई। बहुत होती है इतनी आय गांव के लोगों के लिए।

अब वहां पर बहुत खूबसूरत सड़कें बन गयी हैं। पहले लोग झुग्गियों में रहते थे, अब सबके पास बहुत खूबसूरत मकान हैं। इतना बढ़िया स्कूल, इतना बढ़िया अस्पताल, वहां राशन की बिल्कुल चोरी नहीं होती। राशन आता है तो सबके सामने उतारा जाता है। पहले घर-घर में शराब बनती थी। अब शराब बननी तो दूर की बात, लोगों ने पीनी भी बंद कर दी है। पिछले पांच साल से इस गांव में एक भी पुलिस केस दर्ज नहीं हआ है।

सबसे बड़ी बात ये हुई कि पोपट राव पवार को पहले एक साल के लिए लोगों ने सरपंच बनाया था। अपने काम की वजह से वो इतना लोकप्रिय हो गया कि आज वो बीस साल से सरपंच है। उसको कोई हरा नहीं पाया। उसके ख़िलाफ कोई खड़ा ही नहीं होता। निर्विरोध रूप से वो हर बार सरपंच चुना जाता है।

ये सब इस वजह से हुआ क्योंकि वहां के सरपंच ने एक तरह से अपने हाथ काटकर जनता के सामने रख दिये, कि मैं जो भी निर्णय लूँगा जनता की मर्ज़ी से लूँगा।

पोपट राव पवार ने एक और बात की। जैसा पहले बताया गया है कि सरकारी योजनाओं ने हमारे देश के लोगों को भिखारी बना दिया है। इस सरपंच ने सारी सरकारी योजनाओं को रखा एक तरफ। उसने सबसे पहली ग्राम सभा में सबसे पूछा कि हमारे गांव की समस्याएं क्या हैं और इनके समाधान क्या हैं। किसी ने कहा पीने को पानी नहीं है। किसी ने कहा सिंचाई के लिए पानी नहीं है। किसी ने कहा बिजली नहीं है। किसी ने कहा स्कूल नहीं है। यह निर्णय हुआ कि सबसे पहले स्कूल होना चाहिए बच्चों के लिए। तो पोपट राव ने किसी सरकारी विभाग को नहीं लिखा कि हमारे लिए स्कूल बनवाइए। उसने ग्राम सभा में सबसे पूछा कि क्या हमारे गांव में कुछ लोगों के घर खाली हैं? तो दो लोग खड़े हो गये। उन्होंने कहा हमारे दो दो कमरे खाली हैं। आप ले लीजिए। तो उन्होंने उन चार कमरों का स्कूल बना लिया। फिर अध्यापक कहां से आयें? तो उन्होंने सरकार को नहीं लिखा कि अध्यापक भेजिए, अतिरिक्त अध्यापकों की भर्ती कीजिए। उन्होंने ग्राम सभा में पूछा कि ''भई कोई लड़के खाली हों, पढ़ा सकें तो बड़ा अच्छा होगा''। तो चार लड़के तैयार हो गये। उन्होंने पढ़ाना

चालू कर दिया। एक साल में परिणाम अच्छे आये।

पोपट राव बताते हैं कि जब उन्होने ग्राम सभाएं शुरू की तो उस गांव में इतनी गुटबाजी थी कि लोग ग्राम सभा में आते ही नहीं थे। गुट थे, बहुत ज़्यादा लड़ाई झगड़े थे। लेकिन एक साल में धीरे धीरे लोगों ने देखा कि सरपंच तो हमारे भले का काम कर रहा है। हमारे बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूल खोला है। तो लोगों ने ग्राम सभा में आना चालू किया।

फिर ग्राम सभा में चर्चा हुई कि गांव में इतने अकाल पड़े जिसकी वजह से गांव का पानी 80 फीट नीचे पहुंच गया। उन्होंने तय किया कि हम पानी संचयन करेंगे, पेड़ लगाएंगे। फिर से, उन्होंने सरकार की तरफ नहीं देखा। खुद पेड़ लगाए। खुद जल संचयन किया और उसकी वजह से जो पानी 80 फीट पर था वो 15 फीट पर आ गया। पहले लोग एक भी फसल नहीं निकाल पाते थे। अब दो दो तीन तीन फसलें निकालने लगे।

एक और बड़े मज़े की बात है। 1980 में वन विभाग के लोगों ने भी यहाँ पेड़ लगाये थे। उन पेड़ों को यही गांव वाले काट काट कर ले गये थे। क्योंकि वो पेड़ उनके नहीं थे। उनको उन पेड़ों से कोई आत्मीयता नहीं थी। ये पेड़ तो सरकारी पेड़ थे। लेकिन अब जब इन लोगों ने खुद अपने पेड़ लगाये, तो इन्होंने किसी को काटने नहीं दिया। क्योंकि अब ये इनके अपने पेड़ थे। लोगों ने स्वयं मिलकर लगाये थे। इस तरह से इस गांव का विकास हुआ।

हिवरे बाज़ार की कहानी सुनने के बाद बहुत सारे लोग कहते हैं कि यहां विकास इसलिए हुआ क्योंकि यहां तो अच्छा सरपंच था। पोपट राव पवार था। बिल्कुल ठीक बात है। हिवरे बाज़ार में विकास इसीलिए हुआ क्योंकि वहां अच्छा सरपंच था। अगर पोपट राव पवार नहीं होता तो वहां विकास नहीं हो सकता था।

अच्छा सरपंच कौन होता है? हम कई ऐसे लोगों से मिले जो बहुत अच्छे सरपंच हैं, बड़े ईमानदार सरपंच है। बिल्कुल चोरी नहीं करते। राजस्थान में एक सरपंच से मिले जो बहुत अच्छा है। बहुत अमीर है, बहुत पैसे वाला है। अपने खुद के पैसे खर्च करता है। चोरी बिल्कुल नहीं करता है। लेकिन वो जनता से नहीं पूछता, जनता की मांगे पूरी नहीं करता। वो अपनी मर्ज़ी से काम करता रहता है। उसने अपने गांव के बाहर अपने पैसे खर्च करके शौचालय बनवा दिये। लेकिन लोगों को शौचालय नहीं चाहिए। जब से शौचालय बने हैं, वो बंद पड़े हैं क्योंकि लोग उन्हें इस्तेमाल नहीं करते।

तो अच्छा सरपंच वो हुआ जो लोगों के साथ मिलकर ग्राम सभाओं में निर्णय ले। सारे निर्णय जनता ले और वो उन निर्णयों का केवल पालन करे। ऐसा सरपंच ही अच्छा सरपंच है।

पोपट राव पवार इसलिए एक अच्छे सरपंच हैं क्योंकि वो सभी निर्णय जनता के साथ मिलकर लेते हैं। आज पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभाओं को किसी किस्म के कोई अधिकार

नहीं दिये गये है। तो जहां-जहां अच्छे सरपंच हैं, वो अपने हाथ काटकर जनता के सामने रख देते हैं, और कहते हैं कि हम कोई निर्णय नहीं लेंगे-केवल जनता के निर्णयों का पालन करेंगे। वहां-वहां तो विकास हो रहा है। लेकिन जहां-जहां सरपंच ग्राम सभाओं को निर्णय नहीं लेने देते, वहां-वहां विकास नहीं होता।

हमारे गांव में जनता के साथ मिलकर ग्राम सभाओं में निर्णय होंगे या नहीं-आज की मौजूदा व्यवस्था में ये इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा सरपंच अच्छा है या नहीं। वो पोपट राव की तरह है या नहीं।

हम चाहते हैं कि ये राजनीति बदले। ये जो अच्छे सरपंच के ऊपर सारी राजनीति केंद्रित हो गई है, ये बदले।

जिस दिन क़ानून बदलकर सत्ता सीधे जनता के हाथ में दी जायेगी, उस दिन हमें अच्छे सरपंच का इंतज़ार करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। उस दिन हमें ये इंतज़ार करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि किस दिन हमारे गांव में एक पोपट राव पवार पैदा होगा। फिर चाहे अच्छा सरपंच हो चाहे बुरा, सीधे-सीधे जनता अपने काम करवा लेगी। अपनी ग्राम सभाओं में उसको खुद ठीक कर लेगी। क्योंकि तब क़ानूनन जनता को निर्णय लेने का अधिकार होगा।

उत्तरी केरल के एक गांव का उदाहरण :

ग्राम सभाओं को यानि कि सीधे जनता को निर्णय लेने का अधिकार देने से क्या फायदा होगा? इसे हम केरल के एक उदाहरण से समझने की कोशिश करें। केरल की पंचायती राज व्यवस्था में किसी भी गांव में कोई भी उद्योग तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक वहां के लोग ग्राम सभा में उस उद्योग को मंज़ूरी न दे दें। उत्तर केरल के एक गांव में एक बहुराष्ट्रीय कंपनी लकड़ी का एक कारखाना लगाना चाहती थी। अगर वो लकड़ी का कारखाना लगाती तो उस गांव के आस-पास के बहुत सारे पेड़ों को काटा जाता, लेकिन वहां की जनता नहीं चाहती थी कि वहां के पेड़ों को काटा जाय। उस कारखाने को राज्य सरकार से मंज़ूरी मिल गयी, मंत्री से मंज़ूरी मिल गयी, कलक्टर से मंज़ूरी मिल गयी, यहां तक कि उस गांव के प्रधान को भी पार्टी के दबाव में आकर मंज़ूरी देनी पड़ी। लेकिन जब ये मामला ग्राम सभा में गया तो ग्राम सभा ने मंज़ूरी देने से मना कर दिया। क्योंकि ग्राम सभा को अपने पेड़ों की परवाह थी। वो नहीं चाहते थे कि उनके पेड़ों को काटा जाये।

तो इस उदाहरण से ये साफ ज़ाहिर है कि सरकार बिक सकती है, मंत्री बिक सकता है, कलक्टर बिक सकता है, यहां तक कि प्रधान को भी खरीदा जा सकता है या उसके ऊपर दबाव डाला जा सकता है। लेकिन ग्राम सभा में सारे लोगों को खरीदना नामुमकिन है। ये उनकी ज़िंदगी का सवाल है और लोग जब निर्णय लेते हैं तो वो ये देखते हैं कि किस तरह से उनकी ज़िंदगी बेहतर बनेगी।

मध्य प्रदेश में नए क़ानून का करिश्मा :

2002 में मध्य प्रदेश पंचायती राज क़ानून संशोधित किया गया और उसमें ये व्यवस्था की गयी कि अगर, गांव के स्तर का कोई सरकारी कर्मचारी ठीक से काम नहीं करता है तो गांव के लोग ग्राम सभा में बैठकर उसकी तनख्वाह रोक सकते हैं। इस निर्णय के कई अच्छे परिणाम आए। कुछ उदाहरण:

हम छिंदवाड़ा ज़िले के अमरवाड़ा ब्लॉक के कुछ गांवों में गये। उन गांवों में पहले स्कूल में अध्यापक नहीं आया करते थे। वो आखिरी दिन आते थे और अपनी तनख्वाह लेकर चले जाते थे। जब ये क़ानून आया तो उस गांव के लोगों ने, पूरी ग्राम सभा में बैठकर उन अध्यापकों की तनख्वाह रोक ली। दो महीने तक तनख्वाह रोकी, और तीसरे महीने से उन सब अध्यापकों ने आना चालू कर दिया। कितना सीधा सा समाधान है। अगर आप सीधे-सीधे जनता को सत्ता देते हैं तो लोग अपना विकास खुद कर लेंगे।

इसी तरह से मध्य प्रदेश के एक और गांव में हम गये। वहां पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पहले नहीं आया करती थी। एक दिन वहां के सरपंच ने सारे गांव को शाम को इकट्ठा किया। उस आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को सारे गांव के सामने खड़ा कर दिया। सबके सामने उससे पूछा गया कि ''बताओ तुम पिछले छः महीने में कितनी बार आयी हो?'' अब आप ये सोच कर देखिए कि सारे गांव के सामने वो झूठ नहीं बोल सकती। उसने सारे गांव के सामने कबूल किया कि वह पिछले छः महीने में केवल दो दिन आयी थी। उससे पूछा गया कि ''अगर तुम केवल दो दिन आयी तो सरकार जो आंगनवाड़ी केन्द्र के लिए पैसा भेजती है, उस पैसे का क्या हुआ?'' उसने सारे गांव के सामने कबूल किया कि वह उस पैसे को खा गयी।

आप सोचिये कि अगर क़ानून में ग्राम सभा को यह ताकत नहीं दी गई होती तो लोगों के पास क्या चारा था? वो आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आ नहीं रही थी, उसने पैसे का गबन किया था, तो लोग क्या कर सकते थे? लोगों के पास एक ही चारा था कि वो किसी निदेशक (आंगनवाड़ी) को शिकायत करते। या तो उनकी शिकायत को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता या कोई बहुत अच्छा अधिकारी होता तो उस पर कोई जांच बिठा देता। जांच अधिकारी उस गांव में जाता, उस आंगनवाड़ी कार्यकर्ता से रिश्वत लेता और कागज़ों में लिख देता कि ये तो पिछले छः महीने से लगातार आ रही है। और इन शिकायतों का कोई सिर पैर नहीं है। शिकायतों को खारिज कर दिया जाय। और उन शिकायतों को खारिज कर दिया जाता। उसके बाद गांव के लोग धरना प्रदर्शन करते रहते और उसका कुछ नहीं निकलता।

लेकिन जब गांव वालों को सीधे-सीधे सत्ता दी गयी, निर्णय लेने का अधिकार दे दिया गया तो किसी जांच की ज़रूरत नहीं पड़ी। उस महिला ने सारे गांव के सामने दो मिनट में कबूल कर लिया कि वह छः महीने में केवल दो बार आयी थी और उसने पैसे का गबन किया।

अब देखिये, जैसे ही उसने जुर्म कबूल किया तो कुछ लड़के खड़े हुए और उन्होंने कहा कि इस महिला को निकालो। तो कुछ बड़े बुजुर्ग खड़े हुए। उन्होंने कहा कि इसको निकालना हमारा मकसद नहीं है। हमारा मकसद है कि ये सुधरे। हम इसे दस दिन का समय देते हैं। अगर ये दस दिन में सुधर जाती है तो ठीक है, नहीं तो दस दिन के बाद दोबारा पूरी ग्राम सभा बुलाकर, गांव को इकट्ठा करके हम इसे निकाल देंगे। और वो महिला सुधर गयी। उसे निकालने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

❖❖❖

जब जनता निर्णय लेगी

आइये देखते हैं कि अगर स्वराज आता है, अगर क़ानून में सीधे जनता को ताकत दी जाती है, तो किस तरह से अलग-अलग क्षेत्रों में सुधार होने की संभावनाएं पैदा होती हैं। वैसे तो हर क्षेत्र में सुधार की संभावनाएं बढ़ेंगी, नीचे हम केवल कुछ उदाहरण दे रहे हैं:

शिक्षा में सुधार :

आज सरकारी स्कूलों की हालत बहुत खराब है। ठीक से पढ़ाई नहीं होती, बच्चों के बैठने के लिए डेस्क नहीं है, पंखे नहीं है, शौचालय नहीं है, पीने का पानी नहीं है। और जब भी लोग सरकार को शिकायत करते हैं तो उस पर कोई कार्रवाई नहीं होती।

अगर सरकार ऊपर से मुक्त फ़ंड भेजेगी तो ग्राम सभा में बैठकर लोग ये तय कर सकेंगे कि उन्हें अपने बच्चों के लिए स्कूल में क्या-क्या सुविधाएं देनी हैं। सीधे-सीधे उसके बारे में निर्णय ले सकेंगे। उन्हें कहीं ऊपर किसी अधिकारी से, या किसी नेता से, या राज्य सरकार से अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

उसी तरह सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की कमी है। एक अध्यापक 200-300 बच्चों को पढ़ा रहा है। 3-4 कक्षाओं के बच्चों को एक साथ एक ही अध्यापक पढ़ाता है। ऐसे पढ़ाई नहीं हो सकती। पढ़ाई के नाम पर तमाशा हो रहा है। अगर सीधे-सीधे लोगों को ताकत दी जाएगी तो ग्राम सभाओं में बैठकर लोग आपस में निर्णय लेंगे कि हमारे यहां अध्यापकों की इतनी कमी है। इतने और अध्यापकों की ज़रूरत है। फिर उन्हें राज्य सरकारों को लिखने की ज़रूरत नहीं है कि इतने और पद बनाओ, इतनी रिक्तियां करो, इस पर भर्ती करो। वो अपनी ग्राम सभा में बैठेंगे, कितने और अध्यापकों की ज़रूरत है ये तय करेंगे, और खुद ही भर्ती करेंगे।

इसी तरह से जो अध्यापक आज नियुक्त भी हैं वो भी ठीक से नहीं पढ़ाते। महीने के अंत में आते हैं और तनख्वाह ले जाते हैं। या अगर स्कूल आ भी जाते हैं तो पेड़ के नीचे बैठकर गप्पे मारते

रहते हैं, बच्चों को नहीं पढ़ाते और बच्चे खेलते रहते हैं। अगर ग्राम सभा को ताकत दी जाएगी तो लोग इन अध्यापकों को तलब कर सकेंगे। ग्राम सभा में उनसे सवाल-जवाब कर सकेंगे। और ज़रूरत पड़ी तो उन्हें दंडित भी कर सकेंगे। सीधे-सीधे उन अध्यापकों को ठीक करने की ताकत ग्राम सभा को होगी।

स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार :

उसी तरह से स्वास्थ्य सेवाओं को लेते हैं। गांव के सरकारी अस्पताल में डॉक्टर ठीक से इलाज नहीं करते, गाली गलौच करते हैं, बदतमीज़ी करते हैं, आते ही नहीं है, दवाईयां चोरी हो जाती हैं। अगर ग्राम सभा के पास ताकत होगी तो वह इन डॉक्टरों को सीधे-सीधे तलब कर पायेगी, इनसे सवाल-जवाब कर सकेगी। और ज़रूरत पड़ने पर इन्हें दडिंत भी कर सकेगी। अगर अस्पताल में दवाओं की कमी है और ग्राम सभा को मुक्त फ़ंड मिलेगें तो उससे वो अस्पताल के लिए दवाएं भी खरीद सकती है। और अगर दवाओं की चोरी होती है तो सीधे-सीधे सरकारी अस्पताल के कर्मचारियों से सवाल-जवाब कर सकती हैं, उन्हें दंडित कर सकती हैं। इससे सीधे-सीधे भ्रष्टाचार कम होगा। क्योंकि आज भ्रष्ट अधिकारियों के ख़िलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जाती। अगर ग्राम सभा के पास ताकत होगी तो वो भ्रष्ट अधिकारियों को तलब कर सकेगी और उन्हें दंडित कर सकेगी।

नक्सलवाद से छुटकारा :

ग्राम सभाओं को ताकत देने से नक्सलवाद पर बहुत बड़ा असर पडेगा। इसे एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। छत्तीसगढ़ में लोहांडीगुड़ा में टाटा एक स्टील प्लांट लगाना चाहता था। उसे 10 गांवों की ज़मीन की ज़रूरत थी। ये 10 गांव अनुसूचित क्षेत्र हैं। यहां पर पेसा क़ानून लागू होता है। पेसा क़ानून कहता है कि अगर सरकार वहां की ज़मीन अधिग्रहण करना चाहती है तो उसे वहां की ग्राम सभाओं से विचार विमर्श करना पड़ेगा। सरकार ने यहां की ग्राम सभाओं को लिखा। ग्राम सभाएं हुईं। लोगों ने ज़मीन देने से मना कर दिया। सरकार ने दोबारा इनसे निवेदन किया। दोबारा ग्राम सभाएं हुईं। और उसमें उन्होंने सरकार के सामने 15 शर्तें रखीं और कहा कि अगर आप हमारी ये 15 शर्तें मान लें तो हम ज़मीन देने के लिए तैयार हैं। वो शर्तें बहुत वाज़िब थीं। जैसे उनमें एक शर्त थी कि हमें इतना मुआवज़ा चाहिए, एक शर्त थी कि इतने पेड़ कटेंगे तो इतने पेड़ लगने चाहिए। हर घर से एक व्यक्ति को रोज़गार मिलना चाहिए इत्यादि। सारी वाज़िब मांगें थी। सरकार के पास ये मांगे गयी तो सरकार ने ये मांगें नहीं मानी और ज़ोर ज़बरदस्ती से पुलिस भेज कर ज़मीनें अधिग्रहण कर लीं। इसके बाद इन गांवों के लोगों ने वहां की दीवारों पर लिख दिया 'नक्सली आओ, हमें बचाओ'। सुनने में आया कि बाद में ये दसों गांव जाकर नक्सलियों के साथ मिल गये।

तो अगर सीधे-सीधे जनता को अपने और अपने गांव के बारे में अंतिम निर्णय लेने के

अधिकार होंगे तो जनता नक्सलियों के पास न ही जाएगी और न उनका समर्थन करेगी। बिना जन आधार के, बिना जनता के सहयोग के नक्सलवाद नहीं रह पाएगा।

नशाबंदी में सफलता :

दिल्ली के कुछ वार्डों में पिछले एक साल से मोहल्ला सभाएं चल रहीं हैं। हर महीने मोहल्ले के लोग, वहां के अधिकारी और वहां के नेता इकट्ठे होते हैं और अपने इलाके के विकास के बारे में चर्चा करते हैं। सोनिया विहार की ऐसी ही एक मोहल्ला सभा में एक लड़के ने खड़े होकर कहा-''हमारे इलाके में दारू की दुकान बहुत दूर है, एक दारू की दुकान हमारी कॉलोनी में भी खुलनी चाहिए''। इस मुद्दे पर चर्चा शुरू हुई। मज़े की बात ये है कि मोहल्ला सभा में बैठे हुए कई लोग दारू पीते थे। लेकिन पब्लिक में सब धर्मात्मा बनते हैं। एक के बाद एक सबने कहा कि दारू बुरी चीज़ है और दारू की दुकान नहीं खुलनी चाहिए। और दारू की दुकान खुलने का प्रस्ताव खारिज कर दिया गया। उस दिन लगा कि भरी सभा में ग़लत प्रस्ताव पारित होना काफ़ी मुश्किल होता है। आज किसी भी इलाके में दारू की दुकान खोलने के लिए वहां के नेता और किसी अफ़सर की मंज़ूरी लेनी होती है। जनता से तो पूछा ही नहीं जाता। नेता और अफ़सर या तो रिश्वत लेकर या दबाव में आकर मंज़ूरी दे देते हैं। यदि यह क़ानून बना दिया जाए कि किसी भी इलाके में दारू की दुकान वहां की मोहल्ला सभा या वहां की ग्राम सभा की मंज़ूरी के बिना नहीं खोली जाएगी। तो दारू की दुकान खोलना बहुत मुश्किल हो जाएगा। नशाबंदी की दिशा में यह एक ठोस कदम होगा।

ग़रीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी का निदान :

अगर सीधे लोगों को ताकत दी जाती है तो इसका सबसे बड़ा असर बेरोज़गारी और ग़रीबी पर पड़ेगा। जैसा कि पहले भी हम इस पुस्तक में लिख चुके हैं कि अगर गांव में मुक्त फ़ंड आएगा तो लोग ग्राम सभा में बैठकर ये तय करेगें कि अपने गांव में सबसे ग़रीब कौन हैं? उनकी हमें मदद करनी है। इन्हें राशन देना है। ये भूखे हैं। किसी को भूखे नहीं रहने देना है। हर व्यक्ति के सर पर छत होनी चाहिए। हर बच्चा स्कूल जाये।

अगर कोई व्यवसाय करना चाहता है तो ग्राम सभा मुक्त फ़ंड से उसे क़र्ज़ा दे सकेगी। वह अपना व्यवसाय चालू कर सकेगा। आज वो साहूकार के चंगुल में फंस कर 150 प्रतिशत ब्याज की दर से कर्ज़ा लेता है। और पूरी ज़िंदगी उसके चंगुल में फंस जाता है।

उसी तरह से इस देश में किसान आत्महत्या कर रहे हैं। क्योंकि वो साहूकार से कर्ज़ा लेते हैं और उसका कर्ज़ा चुका नहीं पाते। ग्राम सभा ऐसे किसानों को कर्ज़ा दे सकेगी।

अगर ग्राम सभा को मुक्त फ़ंड मिलेगा तो लोग अपने गांव में गांव की ज़रूरतों के लिए साबुन की फैक्ट्री लगा सकते हैं, तेल की मिल लगा सकते हैं, चावल मिल लगा सकते हैं, आटा चक्की लगा सकते हैं, किस्म-किस्म के उद्योग लगा सकते हैं। इन उद्योगों में लोगों को रोज़गार मिलेगा।

उनकी ग़रीबी दूर होगी।

तो ग्राम सभा में सीधे मुक्त फ़ंड भेजना एक ऐसा राम बाण है जिससे लोगों की आमदनी बढ़ेगी और ग़रीबी और बेरोज़गारी से काफ़ी हद तक छुटकारा मिलेगा।

❖❖❖

निर्मूल आशंकाएं और भ्रांतियां

जब सीधे जनता को सत्ता देने की बात की जाती है तो लोग तरह तरह की शंकाऐं जताते हैं। इन्हीं कुछ शंकाओं का जवाब हमने यहां देने की कोशिश की है।

दलितों पर अत्याचार :

कुछ लोगों को शंका है कि अगर ग्राम सभाओं को ताकत दी गयी तो दलितों के ऊपर अत्याचार बढ़ेगा। इसका जवाब ढूंढने के लिए हम बिहार के कुछ दलितों की बस्तियों में गए। उन्हें स्वराज के बारे में समझाया और सीधे उनसे पूछा कि उन्हें क्या लगता है? ग्राम सभाओं को ताकतवर बनाने से क्या उन पर अत्याचार बढ़ेगा? दलितों का ये मानना है कि ऐसी व्यवस्था आने से उनके संघर्ष करने के मौके बढ़ेंगे। आज अगर किसी दलित के ऊपर किसी गांव में अत्याचार होता है तो वो कहां जा सकता है? आज की व्यवस्था में कौन उसके साथ है? कोई नहीं। ये पूरी की पूरी व्यवस्था शोषण करने वाले लोगों के साथ है। उस गांव का पुलिस वाला शोषकों के साथ है। उस ज़िले का कलक्टर, बी डी ओ, तहसीलदार, ये सब के सब लोग शोषकों के एजेंट के रूप में काम करते हैं। ये सब के सब लोग शोषण करने वालों के साथ हैं। तो वो शोषित दलित कहां जाय? और अगर उस गांव के सारे दलित इकट्ठे भी हो जायं, तो उनके पास केवल कलक्टर के सामने धरना प्रदर्शन करने के सिवाय कोई चारा नहीं है। दलितों ने हमें ये कहा कि अगर सीधे ग्राम सभाओं को अधिकार दिये जाते हैं और अगर दलित इकट्ठे हो जाते हैं तो ग्राम सभा की मीटिंग में वो इकट्ठे होकर अपनी आवाज़ को रखने की कोशिश कर सकते हैं। इसके लिए संघर्ष कर सकते हैं। दूसरी बात अग्रिम जाति में भी कुछ ऐसे लोग हो सकते हैं, जो दलितों का साथ देना चाहते हैं। वो गांव में शोषण होते देखते हैं और दलितों का साथ देना चाहते हैं। लेकिन आज वो कुछ नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं है। और आज की व्यवस्था में उनकी कोई भूमिका नहीं है। अगर ग्राम सभा होगी तो ऐसे लोग भी अपनी आवाज़ उठायेंगे। वो दलितों के हक में

बोलेंगे। दलितों के साथ बातचीत में दलितों ने हमें ऐसा कहा।

इसके अलावा स्वराज की व्यवस्था में दलितों के संघर्ष के लिए एक और मार्ग खुलेगा। नई व्यवस्था में एक लोकपाल बनाया जाएगा। अगर किसी गांव के लोगों को ग्राम सभा में आने से रोका जाता है या उनकी बातों को नहीं लिखा जाता है तो वो लोकपाल को शिकायत कर सकते हैं। और लोकपाल की ज़िम्मेदारी होगी कि वो एक और दिन ग्राम सभा बुलाकर अपनी निगरानी में ग्राम सभा कराये और अपनी निगरानी में ये देखे कि वहां सब लोगों को आने दिया जाता है।

तो ऐसी नई व्यवस्था में दलितों को लड़ने के लिए तीन और नये मौके मिलेंगे। दलितों की व्यवस्था में तुरंत सुधार होगा-ऐसा नहीं है। हमारा प्रश्न है कि आज जब सारी की सारी राजनैतिक सत्ता सरपंच के अंदर केंद्रित है, ऐसी व्यवस्था में राजनैतिक सत्ता के दुरुपयोग के ज़्यादा अवसर हैं या तब जब कि ये सारी सत्ता सरपंच से छीनकर ग्राम सभा को दे दी जाय, उसमें ज़्यादा शोषण के आसार हैं? हमें लगता है कि ग्राम सभा में शोषण होने के अवसर कम होंगे। जब सारी सत्ता सरपंच के अंदर निहित है, तब शोषण के ज़्यादा अवसर हैं।

कम से कम यह कहना तो सरासर ग़लत होगा कि ग्राम सभाओं को सत्ता देने से दलितों पर अत्याचार बढ़ेगा। उनकी स्थिति में सुधार हो या न हो, अत्याचार बढ़ने के आसार नज़र नहीं आते। फिर आज की व्यवस्था में जो समाधान दलितों के पास हैं, वो तो रहेंगे ही। उन्हें खत्म नहीं किया जाएगा।

खाप पंचायतों का डर :

कुछ लोग खाप पंचायत का उदाहरण देते हैं कि ये खाप पंचायतें लड़के लड़कियों को मरवा देती हैं। क्या खाप पंचायतों की तरह ग्राम सभाएं भी ग़लत निर्णय नहीं लेंगी?

खाप पंचायतों ने वाकई ऐसे आदेश दिये या नहीं- इस पर एक विवाद है। उस विवाद में पड़े बिना हम केवल यह कहना चाहेंगे कि क़ानूनन ग्राम सभाओं को न तो ये अधिकार है और न ही उन्हें यह अधिकार दिया जाएगा कि वो किसी को मारने का आदेश दे सकें। वो निर्णय मान्य नहीं होगा। वो निर्णय गैरक़ानूनी होगा। क्योंकि जिस व्यवस्था की हम बात कर रहे हैं, उस व्यवस्था में ग्राम सभाऐं क़ानून के दायरे में ही निर्णय ले पायेंगी, संविधान के दायरे में ही निर्णय ले पायेंगी। संविधान और क़ानून के दायरे से बाहर जाकर निर्णय लेने का अधिकार इनको नहीं होगा। तो किसी को मरवाना, किसी को कटवाना, किसी को फांसी देना- ये क़ानून के ख़िलाफ हैं। ये किसी को अधिकार नहीं है कि वो किसी को मरवा दे। इस तरह तो मान लीजिए कल को कोई ग्राम सभा खड़ी होकर कह दे कि ''भई हम तो भारत का हिस्सा नहीं है, हम तो भारत से अलग होना चाहते हैं''। ऐसा निर्णय लेने का इनको अधिकार नहीं होगा। उनको संविधान के दायरे में काम करना पड़ेगा। उनको जितनी ताकतें दी गयी हैं केवल उतनी ताकतों का वो इस्तेमाल कर सकते हैं।

ग्राम सभाओं को ताकत देने से सामाजिक कुरीतियां बढ़ेंगी या घटेंगी ?

ग्राम सभाओं को ताकत देने से सामाजिक कुरीतियों पर क्या असर पड़ेगा? जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, किसी को डायन घोषित कर उस पर अत्याचार करना, भूत-प्रेत पिशाच पर अंधविश्वास इत्यादि। यदि ग्राम सभाओं को अधिकार दिये जाते हैं तो क्या ये कुरीतियां बढ़ेंगी?

सभी सामाजिक कुरीतियां सदियों से चली आ रही ग़लत मान्यताओं का नतीजा है। ये मान्यताऐं लोगों के दिलो दिमाग़ पर बुरी तरह से हावी हैं। इनमें से कई बुराइयों को क़ानूनन अपराध घोषित कर दिया गया है और इनके ख़िलाफ सज़ा का प्रावधान भी है। अत: यदि कोई ग्राम सभा किसी कुरीति का समर्थन करती है तो वह गैरक़ानूनी होगा।

अत: ग्राम सभाओं से कुरीतियां बढ़ेंगी- ऐसा होने के आसार कम नज़र आते हैं लेकिन उनके कम होने के आसार भी नज़र नहीं आते। हमें यह समझना पड़ेगा कि यदि हम वाकई इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते हैं तो इसके लिए व्यापक रूप से लोगों के बीच सामाजिक आंदोलन छेड़ने होंगे, लोगों के साथ संवाद करना होगा। उनके दिल और दिमाग पर छाई सदियों की मान्यताओं को दूर करना होगा।

ग्राम सभाओं में तो लोग लड़ेंगे?

कई लोगों का ये मानना है कि गांव के लोग निर्णय नहीं ले सकते, गांव के लोग अनपढ़ होते हैं। अगर ग्राम सभा होगी तो ग्राम सभा में लोग लड़ेंगे। कुछ लोग तर्क देते हैं कि जब सरपंच चुना जाता है तो सरपंच को मान लीजिए 60 प्रतिशत वोट मिले। तो 40 प्रतिशत लोग तो उसके ख़िलाफ हुए। इन लोगों का कहना है कि ऐसे विरोधी लोग ग्राम सभाएं नहीं होने देंगे। दुनिया भर के अभी तक के अनुभव यही बताते हैं कि यह डर बेबुनियाद है।

इस पुस्तक में हिवरे बाज़ार का उदाहरण है। वहां पहले खूब गुटबाजी थी। लोग लड़ते थे। यहां तक कि गांव में रंजिश के चलते खून भी हो चुके थे। हर सप्ताह पुलिस आई रहती थी। वहां भी जब ग्राम सभाएं शुरू हुईं तो पहले कम लोग आते थे। धीरे धीरे लोगों ने आना चालू किया। गांव के झगड़ों की भी ग्राम सभा में चर्चा होने लगी। सबके मिल बैठकर बात करने का मंच बना और आज हिवरे बाज़ार सर्व संपन्न है।

दिल्ली में साल भर से मोहल्ला सभाएं चल रही हैं। इन मोहल्ला सभाओं में हर किस्म के लोग आ रहे हैं। भाजपा का पार्षद होता है तो कांग्रेस वाले भी आते हैं। कांग्रेस का पार्षद होता है तो भाजपा वाले भी आते हैं। वहां पर चर्चाएं होती हैं। थोड़ा बहुत लड़ाई झगड़ा ज़रूर होता है, वाद-विवाद भी ज़रूर होता है। तर्क-बहस ज़रूर होती है। लेकिन अंत में निर्णय भी होते हैं।

चलिए और कुछ हो या न हो कम से कम इतना तो ज़रूर होगा कि जिन-जिन गांवों में लोग

आपस में बैठकर निर्णय लेंगे, वहां-वहां सुधार होगा। जिन-जिन गांवों के लोग आपस में लड़ेंगे वहां सुधार नहीं होगा। तो उसके बाद लोग यह नहीं कह सकते कि फ़लाँ अधिकारी चोर है, या फ़लाँ पार्टी चोर है या फ़लाँ नेता चोर है। उन्हें ये कहना पड़ेगा कि ''हम ही निकम्मे हैं। हम ही लड़ते रहते हैं। और जब तक हम नहीं सुधरेंगे तब तक सुधार नहीं हो सकता''। अब वो किसी और को दोष नहीं दे पायेंगे। अपनी तकदीर, अपनी ज़िंदगी, अपनी ग़रीबी, अपनी बेरोज़गारी के लिए उनको खुद अपने को दोष देना पड़ेगा।

आज की व्यवस्था में दिल्ली में बैठकर या लखनऊ या भोपाल में बैठकर कोई अधिकारी या कोई नेता, हमारी ज़िंदगी के बारे में निर्णय लेता है। अब आप ही बताइये कि कौन सी बात ज़्यादा ठीक है - हमारी ज़िंदगी के बारे में हमारे गांव के लोग निर्णय लें या दूर बैठकर कोई अधिकारी या नेता निर्णय ले? यकीनन हमारा सारा गांव बैठकर खुद निर्णय ले - ये ज़्यादा अच्छी बात है। हमारा सारा गांव बैठेगा तो ठीक है हम लड़ेंगे, झगड़ेंगे, मरेंगे, कटेंगे सब होगा लेकिन अंत में हमारे गांव में हम ही लोग निर्णय लेंगे। हम प्यासे हैं, हमें पानी चाहिए और वो दूर बैठा अधिकारी कहता है कि नहीं-नहीं पार्क बनवाएंगे, कम्प्यूटर भेजेंगे। उसे हमारी ज़रूरतों का क्या पता? तो चाहे हमारे गांव में लड़ाई हों, झगड़े हों, लेकिन हमारे गांव के निर्णय हमारे गांव में ही लिये जायं। हमारे मोहल्ले के निर्णय हमारे मोहल्ले में ही लिये जायं। उसी में हम सब लोगों का फायदा है।

'पेसा' क़ानून का क्या हुआ?

कई लोगों का कहना है कि पेसा क़ानून में ग्राम सभाओं को सभी ताकतें दी तो हैं। क्या आदिवासी क्षेत्र, जहां पेसा लागू होता है, वहां ग्राम सभायें अच्छा काम कर रही हैं? क्या उन इलाकों में कोई सुधार हुआ। नहीं। बिल्कुल नहीं। पेसा इलाकों में भी ग्राम सभायें बिल्कुल निष्क्रिय और अक्षम हैं। वह इसलिए क्योंकि पेसा क़ानून ग्राम सभाओं को आधी अधूरी ताकत देता है। दूसरी बात, जितना पेसा क़ानून में लिखा है, उसे भी राज्य सरकारों ने आधे अधूरे तरीके से क्रियान्वित किया है।

जैसे, पेसा कहता है कि गांव के विकास की योजना ग्राम सभा में बनेगी। मतलब गांव में सरकारी पैसा कहां खर्च होगा, यह ग्राम सभा तय करेगी। आंकड़ों के मुताबिक गांव में पहुंचने वाला सारा सरकारी पैसा दिल्ली में बनी योजनाओं के तहत पहुंचता है। मुक्त फ़ंड बिल्कुल नहीं दिया जाता। सारे पैसे के बारे में दिल्ली या राज्य की राजधानियों में तय हो जाता है कि कितना पैसा किस गांव में कहां खर्च होगा। तो गांव वाले अपने गांव की क्या योजना बनाएं? है न मज़े की बात। गांव वालों को पैसा खर्च करने का अधिकार दे दिया पर पैसा नहीं दिया। दूसरे, पेसा में गांव के सरकारी कर्मचारियों पर ग्राम सभा के नियंत्रण की कोई बात नहीं है। पेसा के तहत ग्राम सभा का गांव के अध्यापक, वन अधिकारी, पुलिस कर्मचारी, तहसीलदार, स्वास्थ्य कर्मचारी इत्यादि पर किसी तरह का कोई भी नियंत्रण नहीं है। ग्राम सभा कोई भी निर्णय ले ले। उन निर्णयों का पालन तो इन अधिकारियों को ही करना होता है। अगर ये उन निर्णयों का पालन न करें तो ग्राम सभाऐं

उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। ये सभी कर्मचारी सीधे राज्य सरकारों के मातहत हैं। ये ग्राम सभाओं की बजाय राज्य सरकारों की मज़दूरी करते हैं। अक्सर देखा गया है कि ग्राम सभाओं के निर्णयों का पालन करने की बजाय ये अधिकारी गांव के लोगों पर अत्याचार करते हैं।

फिर पेसा में लिखा है कि ज़मीन अधिग्रहण के पहले राज्य सरकार ग्राम सभा से 'विचार विमर्श' करेगी। अधिकतर जगहों पर देखा गया कि 'विचार विमर्श' केवल औपचारिकता है। यह औपचारिकता पूरी करने के बाद पुलिस भेजकर ज़बरदस्ती ज़मीन छीन ली जाती है।

अत: हालांकि पेसा क़ानून पंचायती राज क़ानूनों के मुकाबले अधिक प्रगतिशील है, पर जब तक सीधे सीधे सरकारी फ़ंड, सरकारी कर्मचारी और प्राकृतिक संसाधनों के बारे में अंतिम निर्णय लेने का अधिकार ग्राम सभाओं को नहीं मिलेगा, तब तक स्वराज का सपना अधूरा रहेगा।

अच्छे लोगों के सत्ता में आने से सुधार होगा?

कई लोगों का ये मानना है कि अगर हम अच्छे लोगों को विधायक या सांसद चुनेंगे, अच्छे लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनेंगे तो इससे हमारे इलाके की समस्याओं में फर्क पड़ेगा, इससे हमारे इलाके की समस्याओं का निवारण होगा। यह सोचना बिल्कुल ग़लत है।

ये समझना बहुत ज़रूरी है कि एक विधायक या सांसद की हमारी पूरी व्यवस्था में क्या भूमिका है? संविधान के हिसाब से एक विधायक मैंम्बर ऑफ लेजिसलेटिव असेंबली होता है। यानि कि वो विधान सभा का सदस्य होता है। एक सांसद मैंम्बर ऑफ पार्लियामेंट होता है, यानि कि वो संसद का सदस्य होता है।

अगर हमारे इलाके में पानी नहीं आ रहा, बिजली नहीं आ रही, सड़क टूट गयी है, सफाई नहीं होती है, ग़रीबी है, बेरोज़गारी है, तो हम हर समस्या के लिए दौड़े-दौड़े विधायक और सांसद के पास जाते हैं। हमें ये समझना पड़ेगा कि विधायक और सांसद के पास इन सभी समस्याओं के निवारण के लिए किसी प्रकार की कोई शक्ति नहीं है। संविधान के हिसाब से ये उनका काम नहीं है। संविधान के हिसाब से एक विधायक का काम विधान सभा में अच्छे क़ानून बनवाना है। सांसद का काम संसद में अच्छे क़ानून बनवाना है। अगर हमारे इलाके की सरकारी व्यवस्था ठीक से काम नहीं कर रही है तो उसके बारे में विधायक और सांसद कुछ नहीं कर सकते। संविधान में या क़ानून में इन समस्याओं का समाधान करवाने के लिए उन्हें कोई शक्ति नहीं दी गयी है। मान लीजिए, कि हमारे इलाके में सड़क टूट गयी है या हमारे इलाके में राशन वाला ठीक से राशन नहीं दे रहा। तो विधायक और सांसद उस इंजीनियर के ख़िलाफ कोई कार्रवाई नहीं कर सकते। उस राशन वाले के ख़िलाफ कोई कार्रवाई नहीं कर सकते। वो संसद या विधान सभा में प्रश्न ज़रूर उठा सकते हैं। अब हर सांसद या विधायक प्रश्न करना चाहता है। तो संसद और विधान सभाओं में इतने प्रश्नों के लिए निवदेन आ जाते हैं, कि कौन कौन से प्रश्न उठाये जायेंगे-इसका चयन लाटरी द्वारा होता है। चाह कर भी आपका विधायक या सांसद आपकी समस्याओं के प्रश्न संसद या

विधान सभा में नहीं उठा सकता।

एक सांसद या विधायक को दो करोड़ रुपऐ का फ़ंड भी मिलता है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि इस फ़ंड से वे अपने विधान सभा क्षेत्र या संसदीय क्षेत्र में विकास कार्य करें। लेकिन इस फ़ंड से क्या क्या काम होने चाहिए - वो केवल उन कामों की मंज़ूरी दे सकते हैं। वो काम अच्छा हुआ या बुरा हुआ- इस पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। यह अधिकार विभिन्न सरकारी विभागों के अफ़सरों के पास होता है। सांसद या विधायक का इन सरकारी विभागों और उनके अफ़सरों के ऊपर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं होता है। ऐसा सुनने में ज़रूर आता है कि कुछ सांसद /विधायक उस फ़ंड से काम सैंक्शन करने की रिश्वत लेते हैं। यह तो ग़लत है ही। पर यदि उस फ़ंड से किया गया कोई काम खराब हुआ हो तो उसका भुगतान रोकने का या उसे ठीक कराने तक का अधिकार उन्हें नहीं है।

सांसद और विधायक का काम है कि वो संसद और विधान सभा में अच्छे क़ानून बनायें। लेकिन दुर्भाग्यवश इसमें भी उनके हाथ बंधे हुए हैं क्योंकि जब भी कोई क़ानून विधान सभा या संसद में प्रस्तुत किया जाता है तो हर पार्टी अपने-अपने सारे सांसदों को या अपने सारे विधायकों को निर्देश जारी करती है कि इस क़ानून के पक्ष में वोट देना है कि विपक्ष में। और सांसद या विधायक को अपनी पार्टी की बात माननी पड़ती है। सांसद या विधायक की इतनी भी नहीं चलती कि वो अपनी मर्ज़ी से किसी क़ानून के पक्ष या विपक्ष में वोट डाल सकें।

इससे ये ज़ाहिर है कि न तो वो हमारी दिन ब दिन की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं और न ही अच्छे क़ानून बनवा सकते हैं। तो ये बड़ी विडंबना है कि उनको हम वोट डालकर चुनते हैं। लेकिन जब वो संसद में अपनी बात रखते हैं तो उन्हें अपनी पार्टी की बात माननी पड़ती है। अगर वे बात न मानें तो उन्हें दंडित किया जा सकता है। उनकी सांसद या विद्यायक की कुर्सी छिन सकती है।

इसका मतलब अगर आप अपने इलाके में एक अच्छे व्यक्ति को विधायक या सांसद चुन भी लें तो इससे न तो आपके इलाके की समस्याओं का समाधान होगा और न ही वो व्यक्ति आपके लिए अच्छे क़ानून बनवा पायेगा। है न बड़ा अजीब जनतंत्र जिसमें न तो लोगों की चलती है, और न हमारे चुने हुए प्रतिनिधियों की। केवल कुछ की चलती है- जो मंत्री या प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री बनते हैं, केवल उन लोगों की चलती है। तो चुनाव में चुनकर भेजते हैं हम लोग लेकिन उसके बाद पांच साल तक सत्ता कुछ मंत्री और इस देश के अधिकारी मिलकर चलाते हैं। न ही लोगों का इस व्यवस्था पर नियंत्रण है और न ही लोगों के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का किसी तरह का नियंत्रण है। क्या ऐसा लोकतंत्र हमारे हितों की रक्षा कर सकता है? क्या हम ऐसे लोकतंत्र पर गर्व कर सकते हैं?

हरियाणा में मिर्चीपुर में दलितों के साथ अमानवीय बर्ताव किया गया। हमारी संसद में 70 से

ज़्यादा सांसद अनुसूचित जाति और जन जाति के हैं। ये सब आरक्षित सीटों से चुन कर आये हैं। इन सीटों को इसलिए आरक्षित किया गया था कि ये सांसद अनुसूचित जाति और जन जाति के लोगों के हितों की रक्षा करेंगे। जब मिर्चीपुर में दलितों के साथ अत्याचार हुआ तो स्वभाविक प्रश्न उठता है कि इन सभी सांसदों ने इस मामले को संसद में क्यों नहीं उठाया, इन्होंने इसकी आवाज़ क्यों नहीं उठाई? जब इनमें से कुछ सांसदों से बात की तो उन्होंने कहा कि हम पार्टी की इजाज़त के बिना कुछ नहीं कर सकते। क्या हमारा जनतंत्र पार्टियों की राजनीति और दादागिरी में फंस कर रह गया है?

जो लोग ये कहते हैं कि हमें अच्छे लोगों को चुनकर भेजना चाहिए, हम उनसे सहमत हैं। बिल्कुल अच्छे लोगों को भेजना चाहिए, इसमें कोई दो राय नहीं है। लेकिन अच्छे लोगों को चुनकर भेजने से व्यवस्था में सुधार होगा ऐसा कतई नहीं होने वाला। लेकिन ये भी बात है कि अगर हम अपराधी को चुनकर भेजेंगे तो वो व्यवस्था को और ज़्यादा दूषित कर देंगे। अच्छे लोगों को चुनकर भेजने से व्यवस्था में सुधार तो नहीं होने वाला, हां! व्यवस्था का और पतन ज़रूर रुकेगा या पतन की गति धीमी होगी।

आज व्यवस्था इतनी दूषित हो गई है कि अच्छा अधिकारी या अच्छा मंत्री भी कुछ नहीं कर पाता। उसके ऊपर, नीचे और साथ में काम करने वाले लोग उसे काम नहीं करने देते। अक्सर कई बहुत अच्छे और ईमानदार अफ़सरों को कहते सुना है- ''भई हम आपकी बात से पूरी तरह से सहमत हैं। आपका मुद्दा बिल्कुल ठीक है। लेकिन हमारे ऊपर इतना दबाव है कि हम आपकी कुछ मदद नहीं कर पायेंगे।''

राजनीति में बदलाव बिना सुधार असंभव :

हमारे देश में बहुत सारे अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता, अच्छे-अच्छे संगठन अलग मुद्दों पर काम कर रहे हैं। जैसे कोई शिक्षा पर काम कर रहा है, कोई स्वास्थ्य पर काम कर रहा है, कोई जल, जंगल, ज़मीन के मुद्दे पर काम कर रहा है। हमें ये समझना पड़ेगा कि जब तक ये पूरी की पूरी राजनैतिक व्यवस्था नहीं बदलेगी, मतलब निर्णय लेने का अधिकार सीधे-सीधे जनता के हाथ में नहीं आयेगा तब तक न शिक्षा सुधरेगी, न स्वास्थ्य सुधरेगा और न जल, जंगल, ज़मीन के मुद्दों में सुधार होगा। अगर हमने सारी ताकत लगाकर मान लीजिए ज़मीन के क़ानून को बदलवा भी दिया, जंगल के क़ानून को बदलवा भी दिया, जल के क़ानून को बदलवा भी दिया, शिक्षा के क़ानून को बदलवा भी दिया तो इसको लागू करना कलक्टर का काम है। वो अगर फिर भी नहीं करेगा और अगर क़ानून की अवहेलना करेगा तो हम उसका क्या कर लेंगे? अक्सर हमारे देश में ऐसा ही होता आया है-क़ानून बहुत अच्छे अच्छे बने पर हर क़ानून की अवहेलना की गई। जिन अधिकारियों को इन क़ानूनों को लागू करना है वो फिर भी इन क़ानूनों को अगर लागू नहीं करेंगे तो क्या होगा?

जब तक इन लोगों के ऊपर सीधे सीधे ग्राम सभा का नियंत्रण नहीं होगा- कि गांव की ग्राम

सभा में बैठकर लोग अधिकारियों को तलब कर सकें, अगर वो ठीक से काम नहीं करते तो उनको दंडित कर सकें, जब तक ये व्यवस्था नहीं आयेगी तब तक न शिक्षा सुधरेगी, न स्वास्थ्य सुधरेगा, न ज़मीन सुधरेगी, न जल सुधरेगा, न जंगल सुधरेगा। इसलिए हमें समझना होगा कि जब तक हम इस जड़ को नहीं पकड़ेंगे तब तक सुधार होना मुश्किल है।

व्यक्ति निर्माण और व्यवस्था सुधार :

कुछ लोगों का मानना है कि हमें व्यक्ति निर्माण पर ज़्यादा ज़ोर देना चाहिए। अगर लोग सुधर गये तो, व्यवस्था अपने आप सुधर जाएगी।

प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान व्यवस्था इतनी दूषित हो गई है- क्या यह व्यवस्था व्यक्ति निर्माण होने देगी? क्या यह व्यवस्था व्यक्ति निर्माण में बाधक नहीं है?

आज की सबसे बड़ी समस्या ये है कि वर्तमान व्यवस्था व्यक्ति को अच्छा बनने ही नहीं देती। वह चाहकर भी अच्छा नहीं बन सकता। वर्तमान व्यवस्था सुधार के बिना क्या व्यक्ति निर्माण हो पायेगा?

इसे एक उदाहरण से समझें। राशन और मिट्टी का तेल वितरण करने वालों का कमीशन इतना कम है कि वो बिना चोरी के अपना गुज़ारा कर ही नहीं सकते। मिट्टी तेल के हर एक लीटर पर 7 पैसे कमीशन मिलता है, एक मिट्टी तेल के डीलर का लगभग 10 हजार लीटर महीने का कोटा होता है। इसका मतलब उसकी महीने की कमाई 700 रुपये हुई। इन 700 रुपयों में उसे अपनी दुकान के खर्च निकालकर अपने परिवार को भी पालना है। जो कि असंभव है। वो बेचारा चोरी नहीं करेगा तो क्या करेगा? दिल्ली में लगभग 4000 राशन वाले हैं। तो एक ही झटके में सरकार ने ग़लत व्यवस्था कायम करके 4000 लोगों को दूषित कर दिया। तो जब तक सरकार उनका कमीशन नहीं बढ़ायेगी, तब तक उन राशन दुकानदारों से ईमानदारी की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? जब तक व्यवस्था नहीं सुधरेगी तो क्या उनका व्यक्ति निर्माण संभव है?

आखिर व्यक्ति निर्माण क्यों? और व्यवस्था निर्माण क्यों? अपनी आसक्तियों और विकारों पर नियंत्रण कर व्यक्ति अंततः बुद्धत्व को प्राप्त हो- यह जीवन का लक्ष्य माना गया है। तो व्यक्ति निर्माण तो जीवन और सृष्टि का ध्येय है। अच्छी व्यवस्था, व्यक्ति निर्माण में मदद करती है। बुरी व्यवस्था व्यक्ति निर्माण में बाधा पहुंचाती है। अच्छी व्यवस्था होगी तो व्यक्ति निर्माण की गति और तेज़ होगी। तो व्यवस्था निर्माण केवल रास्ता है। व्यक्ति निर्माण के लिए वह मात्र एक सीढ़ी है। इसमें कोई दो राय नहीं कि जैसे जैसे व्यक्ति निर्माण होता जाएगा, वैसे वैसे व्यवस्था सुधरती जायेगी। और जैसे जैसे व्यवस्था सुधरेगी, व्यक्ति निर्माण में गति आयेगी। सच्चाई के रास्ते पर चलकर न्याय के लिए लड़ाई लड़ना और व्यवस्था निर्माण में सहयोग करना सबसे बड़ा कर्मयोग है। ऐसा कर्मयोग करने से ही व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया सुदृढ़ होती है।

अभी हम देखते हैं कि अधिकतर नेता, अफ़सर और व्यवसायी चोरी करते हैं। इनमें अधिकतर मजबूरी में ग़लत काम करते हैं। यदि उन्हें सही व्यवस्था दी जाये तो क्या इनमें से कई लोग ठीक नहीं हो जायेंगे? तो व्यक्ति निर्माण और व्यवस्था निर्माण दोनों कार्य ही अत्याधिक आवश्यक हैं।

❖❖❖

ग्राम स्वराज के लिए क़ानून बने

ग्राम सभाओं के ज़रिए सीधे जनता निर्णय ले, इसके लिए हमारी क़ानूनी व्यवस्था में निम्न परिवर्तन करने होंगे। ताकि लोगों का अपने जीवन और अपनी नियति पर नियंत्रण हो सके और वे अपने विकास की ज़िम्मेदारी खुद ले सकें।

ग्राम सभा सर्वोच्च होनी चाहिए :

समस्या : वर्तमान व्यवस्था में पंचायतों को बहुत कम अधिकार दिए गए हैं। जो थोड़े-बहुत अधिकार दिए गए हैं, उन पर सरपंच (मुखिया या प्रधान) का नियंत्रण होता है। ग्राम सभाओं का सरपंच पर कोई नियंत्रण नहीं है। उन्हें सरपंचों का पिछलग्गू बना दिया गया है। अधिकतर पंचायती क़ानूनों में ग्राम सभाओं की भूमिका केवल सरपंचों को सलाह देने तक सीमित है, जिसे सरपंच माने या न माने। परिणाम स्वरूप अधिकतर सरपंच भ्रष्ट हो गए हैं। पंचायत के कामों में हो रहे खुलेआम भ्रष्टाचार को लोग असहाय होकर देखते रहते हैं। वो इस बारे में कुछ नहीं कर सकते। इसीलिए पंचायत की गतिविधियों या ग्राम सभाओं की बैठकों से लोग दूर रहते हैं।

जब सरपंच कुछ ग़लत काम करता है, या भ्रष्टाचार करता है तो उसे सही करने का अधिकार क़ानून में लोगों को नहीं दिया गया है। ज़िलाधिकारी को उसके ख़िलाफ कार्रवाई करने का अधिकार है। एक ज़िलाधिकारी के नीचे 1000 से भी अधिक पंचायतें होती हैं। ज़िलाधिकारी गांवों से बहुत दूर ज़िला मुख्यालय में बैठता है, भला उसके लिए यह जानना कैसे संभव है कि कोई सरपंच अच्छा है या बुरा। जब लोग सरपंच के ख़िलाफ ज़िलाधिकारी से शिकायत करते हैं, तो अधिकतर मामलों में तो उनकी शिकायत पर कोई कार्रवाई ही नहीं की जाती, क्योंकि ज़िलाधिकारी के पास समय ही नहीं होता। यदि सरपंच सत्ताधारी पार्टी का हो, या किसी स्थानीय विधायक, सांसद या अन्य किसी राजनीतिज्ञ से उसकी मित्रता हो तो प्राय: ज़िलाधिकारी दबाव में आकर वैसे ही कोई जांच नहीं करते। और इस प्रकार दोषी सरपंचों के ख़िलाफ कोई कार्रवाई नहीं होती।

उल्टे ज़िलाधिकारी के स्तर पर इस अधिकार का दुरुपयोग भी होता है। कई ईमानदार सरपंचों के ख़िलाफ झूठी कार्रवाई शुरू करके उन्हें तंग किया जाता है। क्योंकि ज़िलाधिकारी के पास कई गांव होते हैं, तो वह प्राय: सरपंचों की निगरानी का अपना काम बी.डी.ओ. या अन्य किसी अधिकारी के ज़िम्मे लगा देता है। ये कनिष्ठ अधिकारी प्राय: सरपंचों से पैसा उगाही करना शुरू कर देते हैं। जो सरपंच पैसा नहीं देते, कई बार उनके ख़िलाफ फर्ज़ी आरोप लगा कर जांच शुरू कर दी जाती है। कई बार यही अधिकारी सरपंचों को ग़लत काम करने के लिए विवश भी करते हैं या राजनीतिक दबाव में आकर विरोधी पार्टी के सरपंचों के ख़िलाफ झूठे आरोप लगाकर जांच शुरू कर दी जाती है।

सुझाव : सबसे पहले हमें सरपंच को कलक्टर के चंगुल से मुक्ति दिलानी होगी और उन्हें सीधा जनता के प्रति जवाबदेह बनाना होगा। इसके लिए हमारे निम्न सुझाव हैं।

(क) सभी निर्णयों को लेने का अधिकार ग्राम सभा के पास हो। ग्राम सभा के द्वारा लिये गये निर्णय अंतिम हों। सरपंच का काम केवल इन निर्णयों को लागू करने का हो।

(ख) यदि सरपंच भ्रष्टाचार या अन्य किसी आपराधिक गतिविधि में लिप्त पाया जाए तो ग्राम सभा पुलिस को निर्देश दे सके कि वह आरोपी सरपंच के ख़िलाफ केस दर्ज करके समय-समय पर जांच की प्रगति रिपोर्ट ग्राम सभा के समक्ष प्रस्तुत करे।

(ग) जब तक ग्राम सभा की ओर से विशेष रूप से आग्रह न किया जाए तब तक ज़िलाधिकारी या अन्य किसी अधिकारी को सरपंच के ख़िलाफ किसी प्रकार की कोई कार्रवाई करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

(घ) यदि सरपंच ग्राम सभा की इच्छा का अनुपालन न करे तो ग्राम सभा उस सरपंच को वापस बुला सके। यदि आधे से ज़्यादा मतदाता सरपंच में अविश्वास व्यक्त करते हुए अपने हस्ताक्षर युक्त नोटिस राज्य निर्वाचन आयोग को सौंपते हैं तो राज्य निर्वाचन आयोग 15 दिन के भीतर सभी हस्ताक्षरों को सत्यापित कराकर एक महीने के भीतर (सत्यापन के बाद) महाभियोग के लिए गुप्त मतदान करवाए। अविश्वास मत सफल होने पर सरपंच को उसके पद से हटा दिया जाए और नया सरपंच चुनने के लिए फिर से मतदान करवाया जाए।

सरपंचों को वापस बुलाने का अधिकार एक तरह का ब्रह्मस्त्र है जिसका अन्तिम उपाय के रूप में ही इस्तेमाल होना चाहिए। हालांकि कई राज्यों ने यह अधिकार आज भी ग्राम सभाओं को दे रखा है। और इन राज्यों के कुछ गावों ने अपने इन अधिकारों का प्रयोग भी किया है। लेकिन दुर्भाग्य से इन क़ानूनों में बीच की स्थितियों में सरपंच पर नियंत्रण रखने के लिए ग्राम सभाओं को कोई अधिकार नहीं दिये गये हैं। स्थिति यह है कि या तो सरपंच को रखो या उसे हटा दो। समय-समय पर उपर्युक्त दिशा निर्देश दे कर लोग सरपंच को ठीक नहीं कर सकते। गांव में सरपंच को हटाने की

प्रक्रिया ज्यों ही शुरू होती है, स्थानीय राजनीति अपना काम शुरू कर देती है। साथ ही बाहर से दलगत राजनीति से जुड़े प्रभाव भी दिखाई देने लगते हैं, जिसके कारण गांव में कई अवांछनीय गतिविधियां शुरू हो जाती हैं। इन सब के कारण सरपंच के ख़िलाफ अविश्वास मत के प्रस्ताव पर स्वस्थ बहस नहीं हो पाती।

हमारा मानना है कि यदि ग्राम सभाओं को उपर्युक्त सुझावों के अनुरूप सभी प्रकार के निर्णय लेने का अधिकार मिल जाए तो लोग समय-समय पर सरपंच को आवश्यक दिशा निर्देश जारी कर सकेंगे। सरपंच को हटाने की तब शायद ही कभी ज़रूरत पड़े, क्योंकि निर्णय लेने की हर-एक प्रक्रिया में वह ग्राम सभा के साथ स्वयं साझीदार होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो ब्रह्मस्त्र प्रयोग करने की शायद ही कभी ज़रूरत पड़े।

ग्राम स्तर का काम ग्राम स्तर पर हो :

समस्या : आज इस बात को ले कर घोर भ्रम की स्थिति है कि कौन से कार्य, संसाधन और संस्थान किसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं?

सुझाव : किसी कार्य, संसाधन या संस्थान पर किसका नियत्रंण होगा- पृष्ठ संख्या 36 पर दी गई प्रक्रिया के मुताबिक इनकी सूचियां बनाकर इनका हस्तांतरण किया जाए। इसके बाद हर कार्य, संसाधन एवं संस्थान को चलाने और उसके रख रखाव से संबंधित फ़ंड एवं कर्मचारी उसी स्तर को हस्तांतरित किए जाएं जिसके नियंत्रण में वो आएंगे।

सरकारी कर्मचारियों पर नियंत्रण :

समस्या : आज स्थानीय सरकारी कर्मचारियों के आगे लोग अपने को पूरी तरह असहाय महसूस करते हैं।

सुझाव : (क) विभिन्न स्तरों की पंचायतों को सौंपे गए कार्यों, संसाधनों एवं संस्थानों से जुड़े सभी कर्मचारियों का पूरा नियंत्रण (प्रशासनिक एवं कार्यकारी नियत्रंण सहित) संबंधित स्तर को दिया जाना चाहिए। आगे से सभी कर्मचारियों को उस पंचायत का कर्मचारी माना जाना चाहिए जहां उन्हें स्थानांतरित किया गया है। जब पूर्व नियुक्त कर्मचारी सेवा निवृत्त हों तो संबंधित पंचायत द्वारा ही उनके स्थान पर सीधे नयी नियुक्तियां की जाएं। तब नियुक्तियों में राज्य सरकार की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए।

(ख) सभी स्तरों पर पंचायतों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक संख्या में नए कर्मचारियों की भर्ती करने का भी अधिकार होना चाहिए। इन कर्मचारियों को राज्य सरकार का कर्मचारी नहीं माना जाना चाहिए। वे पंचायत के कर्मचारी हों।

(ग) पंचायतों का अपने कर्मचारियों के ऊपर सम्पूर्ण अनुशासनात्मक नियंत्रण होना चाहिए,

भले ही वे स्थानांतरित हो कर आये हों या उनकी पंचायतों द्वारा सीधी नियुक्ति की गई हो। यानि कि ग्राम सभाएं अपने कर्मचारियों को चेतावनी दे सकें या अन्य प्रकार का दंड देने के साथ-साथ ज़रूरत पड़ने पर उन्हें बर्खास्त भी कर सकें।

(घ) ग्राम सभाओं को यह ताकत भी दी जानी चाहिए कि वे किसी सरकारी डीलर जैसे, राशन की दुकान वाले का लाइसेंस रद्द कर के उसकी जगह किसी नये दुकानदार को नियुक्त कर सकें।

(ड़) सभी ग्राम सभाओं को यह अधिकार भी होना चाहिए कि वे अपने ब्लॉक या ज़िला पंचायत के किसी कर्मचारी को दिशा निर्देश जारी कर सकें और यदि आवश्यकता पड़े तो उसे 'समन' भेज कर अपने यहां उपस्थित होने का भी आदेश दे सकें। यदि ग्राम सभा के इन निर्देशों का किसी दूसरे गांव के निर्देशों से टकराव नहीं होता हो तो उन निर्देशों को संबंधित अधिकारियों के लिए बाध्यकारी माना जाना चाहिए। टकराव की स्थिति में उनका हल उपयुक्त पंचायत स्तर पर किया जाना चाहिए। यदि कोई अधिकारी ग्राम सभा से आये समन की अवहेलना करता है अथवा उसके निर्देशों का उल्लंघन करता है, वैसी स्थिति में ग्राम सभा को यह अधिकार होना चाहिए कि वह संबंधित अधिकारी को फटकार लगा सके या उस पर जुर्माना लगा सके।

सरकारी फ़ंड पर नियंत्रण :

समस्या : केन्द्र एवं राज्य सरकारें प्राय: ऐसी हवाई योजनाएं बनाकर जनता पर थोप देती हैं जिनका जनता की प्राथमिकताओं से कोई लेना-देना नहीं होता। किस तरह से ये योजनाएं भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रही हैं, जनता की ज़रूरतों से परे हैं और जनता में भिखमंगन की आदत डाल रही हैं- इस पर विस्तृत रूप से इस पुस्तक में पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

सुझाव : हमारा मानना है कि इन तमाम योजनाओं को बंद किया जाना चाहिए। पंचायतों को दिया जाने वाला अधिकतर फ़ंड किसी भी योजना के बंधन से मुक्त होना चाहिए। ग्राम सभाओं में जनता तय करे कि वह उस पैसे को कैसे खर्च करना चाहती है।

केरल सरकार अपने वार्षिक बजट का 40 प्रतिशत भाग सीधे सीधे पंचायतों को हस्तांतरित करती है। आज ज़रूरत है कि हर राज्य के कुल बजट का कम से कम 50 प्रतिशत सीधे-सीधे पंचायतों को मुक्त राशि के रूप में आवंटित किया जाए। इस राशि के साथ कोई शर्त नहीं होनी चाहिए। गांव वाले इस फ़ंड को अपनी मर्ज़ी से खर्च करने में सक्षम होने चाहिए।

उच्च अधिकारियों के यहां से फ़ंड रिलीज़ करवाने में पंचायतों को कई बार समस्या होती है और उन्हें रिश्वत भी देनी पड़ती है। इसलिए, जैसा कि केरल में होता है, प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक पंचायत का पैसा प्रत्येक वर्ष के अप्रैल की पहली तारीख़ को सीधे उसके खाते में जमा हो जाना चाहिए। इससे पंचायतों को अपने काम के लिए कहीं से पैसा रिलीज़ नहीं करवाना पड़ेगा।

यदि किसी गांव में दलितों का कोई समूह मांग करे तो संबंधित गांव में उनकी आबादी को ध्यान में रखते हुए ग्राम पंचायत के फ़ंड का एक निश्चित हिस्सा उस दलित ग्राम सभा को आवंटित किया जाना चाहिए। इससे यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि दलितों पर गांव के दबंग लोगों का ज़ोर न चले।

ब्लॉक एवं ज़िला पंचायतों पर नियंत्रण :

समस्या : वर्तमान व्यवस्था में ग्राम पंचायतें मध्य स्तरीय और ज़िला पंचायतों के अधीन होकर काम करती हैं। मध्य स्तरीय पंचायतें ग्राम पंचायतों के प्रस्तावों को मंज़ूरी देती हैं और प्राय: ग्राम सभा के कार्यों का भुगतान भी मध्य स्तरीय या ज़िला स्तरीय पंचायतों के द्वारा होता है। इन मध्य स्तरीय व ज़िला स्तरीय पंचायतों के काम-काज पर जनता का कोई नियंत्रण नहीं होता।

सुझाव : ग्राम सभाएं मध्य स्तरीय और ज़िला पंचायतों के नीचे होने के बजाय उन पर सीधे सीधे नियंत्रण कर सकें- हमें ऐसी व्यवस्था बनानी होगी। हमारा प्रस्ताव है कि लोग अपनी ग्राम सभाओं एवं ग्राम प्रधानों के माध्यम से मध्य स्तरीय एवं ज़िला स्तरीय पंचायतों पर सीधा नियंत्रण रख सकें।

(क) ग्राम सभाओं के प्रस्ताव और निर्णय अंतिम हों। उन्हें ऊपर के किसी भी स्तर से प्रशासनिक, आर्थिक अथवा अन्य किसी भी तरह की मंज़ूरी लेने की ज़रूरत न पड़े।

(ख) कोई नई परियोजना शुरू करने के पहले ब्लॉक या ज़िला पंचायतों को उससे प्रभावित सभी ग्राम सभाओं से मंज़ूरी लेनी पड़े। दूसरी ओर, कोई भी ग्राम सभा अपने ब्लॉक या ज़िला पंचायत को कोई नई परियोजना शुरू करने का सुझाव दे सकती है। सामान्यत: किसी भी निर्णय को तभी लागू किया जाना चाहिए जब सभी प्रभावित ग्राम सभाओं ने उसके लिए मंज़ूरी दे दी हो।

(ग) सरपंच केवल ग्राम सभा और ब्लॉक पंचायत के बीच पुल का काम करेगा। ब्लॉक पंचायत में कोई वायदा करने से पहले सरपंच को अपनी ग्राम सभा से परामर्श करना पड़ेगा और मंज़ूरी लेनी होगी। इसी प्रकार एक ब्लॉक अध्यक्ष को ज़िला स्तरीय पंचायत में कोई वायदा करने से पहले अपनी ब्लॉक पंचायत से परामर्श करके मंज़ूरी लेनी होगी। ग्राम सभा चाहे तो सरपंच को एक हद तक मंज़ूरी न लेने की छूट दे सकती है। लेकिन यह छूट बड़ी सीमित होगी।

नीति निर्माण एवं विधान सभाओं पर सीधा नियंत्रण :

समस्या : भारत में प्रतिनिधित्व लोकतंत्र है। यद्यपि हम अपने राजनेताओं को चुनते हैं, फिर भी दो चुनावों के बीच हमारा उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा बनाए जाने वाले क़ानूनों पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता है। पिछले कुछ वर्षों में ऐसा देखने में आ रहा है कि सरकारें ऐसे क़ानून बना रहीं हैं जो अकसर जनता के हितों के ख़िलाफ होते हैं और कुछ देशी

विदेशी कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिये या विदेशी सरकारों के दबाव में बनाये जाते हैं। इस पर अंकुश लगाने की ज़रूरत है।

सुझाव : क़ानूनों के बनने पर जनता का कुछ हद तक सीधा नियंत्रण होना चाहिए। यह नियंत्रण लोगों को दो प्रकार से दिया जा सकता है :

(क) नये क़ानूनों या नई नीतियों को बनवाने में जनता की भूमिका:

यदि पांच प्रतिशत से अधिक ग्राम सभाएं किसी क़ानून या नीति को बनाने का प्रस्ताव दें तो राज्य सरकार उस प्रस्ताव की एक प्रति शेष सभी ग्राम सभाओं को भेजे। यदि 50 प्रतिशत से अधिक ग्राम सभाएं उस प्रस्ताव को पारित कर दें तब राज्य सरकार को वह क़ानून बनाना पड़ेगा या उस नीति को लागू करना पड़ेगा। इसी प्रकार ग्राम सभाओं को यह अधिकार होना चाहिए कि वे किसी क़ानून को पूर्णत: या आंशिक रूप से रद्द करवा सकें। या किसी सरकारी नीति अथवा परियोजना को संशोधित या निरस्त करवा सकें।

इससे जनता विभिन्न क्षेत्रों में सुधार के लिए सीधी पहल कर सकेगी जैसे पुलिस सुधार, न्यायिक सुधार, भ्रष्टाचार विरोधी सशक्त क़ानूनों का निर्माण इत्यादि। इससे सुधारों का एक नया सिलसिला प्रारंभ होगा।

(ख) संसद एवं राज्य विधान सभाओं में प्रस्तुत सभी क़ानूनों एवं प्रस्तावों के मामले में जनता की राय:

संविधान के अनुसार स्थानीय विधायक एवं सांसद ब्लॉक एवं ज़िला पंचायतों के पदेन सदस्य होते हैं। पर क़ानून में उनको कोई काम नहीं दिया गया है। ऐसा प्रावधान किया जाए कि विधान सभा या संसद में प्रस्तुत सभी विधेयकों एवं प्रस्तावों (वित्त विधेयकों एवं अविश्वास प्रस्तावों को छोड़कर) की एक प्रति वे ब्लॉक पंचायत (या ज़िला परिषद) में लेकर आएं और उसकी एक एक प्रति उस ब्लॉक (या ज़िला) की सभी ग्राम सभाओं के प्रतिनिधियों के बीच बंटवाएं। सभी ग्राम सभाओं में इस पर चर्चा हो और ग्राम सभाओं की सामूहिक राय के आधार पर विधान सभा या संसद में वे अपनी राय रखें।

ग्राम सभा द्वारा सूचना प्राप्त करने का अधिकार :

समस्या : राज्य सरकार द्वारा लिये जाने वाले ऐसे कई फैसलों की जनता को कोई जानकारी नहीं हो पाती जिनका उनके जीवन पर सीधा असर होता है।

सुझाव : ग्राम सभाओं को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे राज्य स्तर तक के किसी भी सरकारी अधिकारी से वह सूचना मांग सके जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनके गांव से संबंधित है। मांगी गई सूचना न देने पर ग्राम सभा को संबंधित अधिकारी पर 25 हज़ार रुपये तक का जुर्माना

लगाने का अधिकार होना चाहिए।

पंचायत सचिव के ऊपर नियंत्रण :

समस्या : पंचायत सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। वह सरपंच एवं अन्य अधिकारियों के साथ मिलकर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। जनता के प्रति उसकी कोई जवाबदेही नहीं होती। जनता का उस पर कोई नियंत्रण भी नहीं होता।

सुझाव : पंचायत सचिव की नियुक्ति ग्राम सभा द्वारा की जानी चाहिए। उसका काम केवल ग्राम सभा के निर्णयों को लागू करना होना चाहिए। ग्राम सभा का उसके ऊपर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए जिसमें उसको दंडित करने, उसका वेतन रोकने और यदि ज़रूरत पड़े तो उसे बर्खास्त करने का अधिकार भी शामिल होना चाहिए।

पंचायतों में भ्रष्टाचार का मामला :

समस्या : सरकारी कार्यों में भारी भ्रष्टाचार व्याप्त है। कई बार तो अत्यंत घटिया और कागज़ी कामों के लिए भी भुगतान कर दिया जाता है। जनता शिकायत करती है पर कोई सुनवाई नहीं होती। इस प्रकार के भ्रष्टाचार के पीछे दो मुख्य कारण हैं-

(क) जब भी कभी गांव में कोई सरकारी काम होता है तो कोई सरकारी अधिकारी यह सत्यापित करता है कि काम संतोषजनक हो गया और उसके लिए भुगतान किया जा सकता है। इस संबंध में ग्राम सभा या जनता से नहीं पूछा जाता। जैसे उत्तर प्रदेश में एस.डी.एम यह प्रमाणित करता है कि किसी नहर की सफाई ठीक हो गई। प्राय: रिश्वत लेकर एस.डी.एम. यह प्रमाणित कर देता है, भले ही नहर में कोई काम हुआ हो या नहीं। वे किसान जो संबंधित नहर के पानी का उपयोग सिंचाई में करते हैं, उनसे कोई कुछ नहीं पूछता।

(ख) दूसरा कारण यह है कि जब इन अधिकारियों के ख़िलाफ शिकायतें की जाती हैं तो उनकी जांच संबंधित विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा की जाती है। जो लापरवाही वश या घूस लेकर या फिर राजनीतिक दबाव के कारण उन शिकायतों पर कार्रवाई नहीं करते। और जनता का उन अधिकारियों पर कोई नियंत्रण नहीं है।

सुझाव : हमारी राय है कि उपर्युक्त दोनों मामलों में ग्राम सभा को निम्न अधिकार दिये जाने चाहिए-

(क) जब तक ग्राम सभा संतुष्टि प्रमाण-पत्र न दे, तब तक गांव में किसी सरकारी काम का भुगतान नहीं किया जाना चाहिए। यदि ग्राम सभा को लगे कि काम संतोषजनक नहीं है, तो वह भुगतान रोकने के साथ साथ, जांच करके घटिया काम के कारणों की पड़ताल भी कर सके। दोषियों को चिन्हित करके उन सभी कमियों को दूर करने के आदेश भी दे सके। यदि दोषी कर्मचारी

पंचायत के किसी स्तर से संबंधित हैं तो ग्राम सभा के पास उनके ख़िलाफ कार्रवाई करने का भी अधिकार होना चाहिए।

(ख) यदि आपराधिक भ्रष्टाचार का मामला बनता हो तो ग्राम सभा पुलिस को मामला दर्ज करने और समय-समय पर उस केस की प्रगति के बारे में बताने के लिए निर्देश देने में भी सक्षम होनी चाहिए।

गांवों में शराब की लत :

समस्या : वर्तमान समय में शराब की दुकानों के लिए राजनेताओं की सिफारिश पर अधिकारियों द्वारा लाइसेंस दे दिया जाता है। वे प्राय: रिश्वत लेकर लाइसेंस देते हैं। शराब की दुकानों के कारण भारी समस्याएं पैदा होती हैं। लोगों का पारिवारिक जीवन तबाह हो जाता है। विडंबना यह है कि जो लोग इससे सीधे तौर पर प्रभावित होते हैं, उन्हें इस बात के लिए कोई नहीं पूछता कि क्या शराब की दुकान खुलनी चाहिए या नहीं? इन दुकानों को उनके ऊपर थोप दिया जाता है।

सुझाव : शराब की दुकान खोलने का कोई लाइसेंस तभी दिया जाना चाहिए जब ग्राम सभा इसकी मंज़ूरी दे दे और ग्राम सभा की संबंधित बैठक में, वहां उपस्थित 90 प्रतिशत महिलाएं इसके पक्ष में मतदान करें। ग्राम सभा में उपस्थित महिलाएं साधारण बहुमत से मौजूदा शराब की दुकानों का लाइसेंस भी रद्द करा सकें।

उद्योग एवं खनन के लिए लाइसेंस :

समस्या : उद्योग या खनन गतिविधियों के लिए लाइसेंस केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा दिया जाता है। लेकिन इसके दुष्प्रभावों से वहां रहने वाले लोगों को दो-चार होना पड़ता है। लाइसेंस देने की प्रकिया में इन लोगों की कोई भूमिका नहीं होती है।

सुझाव : ग्राम सभाओं की अनुमति के बिना किसी औद्योगिक इकाई या बड़े खनन उद्यम को शुरू करने की इजाज़त न दी जाए। अनुमति देने के पहले ग्राम सभाएं कुछ शर्तें भी जोड़ सकती हैं। यदि भविष्य में किसी शर्त का उल्लघंन किया जाता है तो ग्राम सभाओं को यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपनी अनुमति को निरस्त कर सकें।

भूमि अधिग्रहण :

समस्या : जनता की राय की परवाह किये बिना राज्य की विभिन्न एजेंसियों द्वारा लोगों की भूमि का अधिग्रहण किया जाता है। इसके कारण लोग जहां अपना घर-बार खो बैठते हैं वहीं उन्हें बेरोज़गार भी होना पड़ता है। इसके बदले में दिया गया मुआवज़ा प्राय: अपर्याप्त होता है। यदि यह बाज़ार की कीमतों के अनुरूप हो तब भी इससे एक किसान की समस्या नहीं सुलझती। एक

किसान अपनी एक एकड़ ज़मीन की उपज से अपने परिवार का भरण पोषण कर सकता है, लेकिन वह इसी एक एकड़ ज़मीन के बदले (उदाहरण के लिए) मिले 40 हज़ार रुपये से पूरी ज़िंदगी अपना और अपने परिवार का गुज़र-बसर नहीं कर सकता। इस प्रकार भूमि अधिग्रहण के कारण ग़रीब लोग और ग़रीब हो जाते हैं।

इसके अलावा जब भूमि अधिग्रहित की जाती है तो ज़मीन वालों को तो मुआवज़ा मिल जाता है। लेकिन उन भूमिहीनों को, जो उस ज़मीन पर मज़दूरी करते थे, उन्हें कुछ नहीं मिलता। वो बिल्कुल बेरोज़गार हो जाते हैं।

कई स्थानों पर देखा गया कि स्थानीय लोगों के कड़े प्रतिरोध के बावजूद जब भूमि अधिग्रहण किया गया तो लोग नक्सलवादियों से जा मिले।

सुझाव : ग्राम सभाओं को यह निर्णय लेने की ताकत दी जाए कि कोई परियोजना जनहित में है या नहीं, उसके लिए ज़मीन देनी है या नहीं और अगर देनी है तो किन शर्तों पर देनी है- इस बारे में वो अंतिम निर्णय ले सकें। इसे लागू करने के लिए क़ानून में निम्न प्रावधान किए जाएं।

(क) यदि कोई कंपनी या केंद्र सरकार या राज्य सरकार किसी गांव की ज़मीन अधिग्रहण करना चाहती है, तो वह उस गांव की पंचायत में इस बावत आवेदन दे।

(ख) उस ज़मीन का क्या किया जायेगा और उस पर क्या प्रोजेक्ट लगाया जायेगा, इससे संबंधित सारे कागज़ों के मूल दस्तावेज़ों की प्रतियों के साथ साथ उनके स्थानीय भाषा में अनुवाद उस प्रोजेक्ट से प्रभावित सभी गांवों की पंचायतों में भेजे जायें ताकि लोग उससे जुड़े हर पहलू को जान सकें।

(ग) पंचायतें अपने अपने गांवों में इन कागज़ों के आधार पर जनजागरण अभियान चलाएं। यदि कोई गांव का व्यक्ति इन कागज़ों की फोटो कॉपी लेना चाहे, तो उसे फोटो कॉपी शुल्क लेकर यह उपलब्ध करायी जाये।

(घ) पंचायतों को सारे कागज़ मुहैया कराने के दो महीने के अंदर हर पंचायत अपनी ग्राम सभा बुलाए। हर ग्राम सभा में इस प्रोजेक्ट पर चर्चा होगी। यदि ग्राम सभा को कुछ प्रश्न या शंकायें हों तो ग्राम सभा अपनी पंचायत के माध्यम से आवेदन करने वाली कंपनी या राज्य सरकार या केन्द्र सरकार को लिखेगी कि वो अगली ग्राम सभा की मीटिंग में गांव के लोगों के प्रश्नों के जवाब देने के लिए किसी जानकार अधिकारी को भेजें। यदि कुछ और कागज़ों की ज़रूरत है तो ग्राम सभा उनकी भी मांग कर सकती हैं।

(ङ) अगली ग्राम सभा की मीटिंग में भेजे गए अधिकारी से जनता सवाल जवाब करेगी। लेकिन ज़मीन देने के संबंध में इस सभा में निर्णय नहीं लिया जायेगा। इस सभा में केवल

अधिकारी से सवाल जवाब किये जायेंगे।

(च) अधिकारी द्वारा दिये गये उत्तरों और अभी तक मुहैया कराये गये सभी कागज़ों से यदि ग्राम सभा संतुष्ट है तो वह अंतिम निर्णय लेने के लिए एक और ग्राम सभा बुलाएगी, नहीं तो वह कंपनी/राज्य सरकार/केंद्र सरकार को लिखकर और जानकारी मांग सकती है।

(छ) अंतिम निर्णय वाली ग्राम सभा में बाहर का कोई व्यक्ति या अधिकारी मौजूद नहीं होगा। न ही पुलिस होगी। केवल मीडिया को दूर बैठकर देखने की इजाज़त होगी। ऐसी ग्राम सभा की अध्यक्षता सरपंच या प्रधान नहीं करेगा। वहीं मौजूद गांव के लोग मौके पर आम सहमति से गांव के किसी आदरणीय व्यक्ति को ग्राम सभा की अध्यक्षता के लिए चुनेंगे। मीटिंग के मिनिट्स पंचायत सेक्रेटरी नहीं लिखेगा। गांव के लोग गांव के किसी भी व्यक्ति को यह ज़िम्मेदारी सौंप सकते हैं। इस ग्राम सभा में आम सहमति से तय होगा कि गांव के लोग ज़मीन देना चाहते हैं या नहीं और यदि देना चाहते हैं, तो किन शर्तों पर देना चाहते हैं। आम सहमति बनाते वक्त ग्राम सभा सभी लोगों के हितों का उचित ख्याल रखेगी। ऐसे लोगों के हितों की भी रक्षा की जाएगी जो भूमिहीन हैं और भूमि अधिग्रहण से उनका रोज़गार छिनने की आशंका है। यदि आवश्यक हो तो एक से अधिक गांवों की संयुक्त ग्राम सभा बैठक आयोजित की जा सकती है। ताकि बातचीत के द्वारा एक मत पर पहुंचा जा सके।

(ज) ग्राम सभा का यह निर्णय अंतिम होगा। इसे कोई सरकार न तो रद्द कर सकेगी और न ही उसमें किसी प्रकार का बदलाव कर सकेगी।

(झ) राष्ट्रीय स्तर पर एक पुनर्वास नीति बनाई जाए जिसमें भूमि वाले और भूमिहीन, दोनों के न्यूनतम अधिकारों की बात लिखी हो। यदि कोई ग्राम सभा भूमि अधिग्रहण के लिए तैयार होती है तो इस पुनर्वास नीति में लिखे प्रावधान लोगों के न्यूनतम अधिकार होंगे। पर यदि ग्राम सभा चाहेगी तो इनसे अधिक मांग करने के लिए भी स्वतंत्र होगी। ग्राम सभा का निर्णय अंतिम निर्णय होगा।

(ञ) देश इस वक्त भारी खाद्य संकट से गुजर रहा है। आने वाले समय में यह संकट और भी ज़्यादा गहराएगा। इसीलिए राष्ट्र हित में यह बहुत ज़रूरी है कि देश की उपजाऊ भूमि को खेती के लिए ही इस्तेमाल किया जाए। सड़क, बिजली और कारखानों के बिना तो देश का काम चल जाएगा पर रोटी के बिना हमारा एक दिन भी काम नहीं चलेगा। इसीलिए यह क़ानून में डाला जाये कि जिस भूमि पर दो या दो से ज़्यादा फसलें निकलती हैं, हर गांव अपनी ऐसी भूमि को ग्राम सभाओं में चिन्हित करे। ऐसी भूमि को किसी भी हालत में कृषि के अलावा किसी दूसरे उपयोग में नहीं लाया जाए।

भूमि दस्तावेज़ :

समस्या : स्थानीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा भूमि दस्तावेज़ों के साथ बड़े पैमाने पर छेड़-छाड़ और धोखाधड़ी होती है। ऐसे कई मामले सामने आये हैं जिनमें ज़मीन के ग़रीब मालिक की

जानकारी के बगैर ही उसकी ज़मीन किसी दूसरे व्यक्ति के नाम हस्तांतरित कर दी गई। इसके अलावा भूमि दस्तावेज़ के कार्यालयों से कोई जानकारी हासिल करना भी टेढ़ी खीर है। कार्यालय से काम करा लेना तो और भी कठिन है।

सुझाव : भूमि से संबंधित सभी दस्तावेज़ों की देख-रेख व उन पर कार्य ग्राम सभा की देख रेख में पंचायत कार्यालय द्वारा किये जाने चाहिए। हर महीने, होने वाले हस्तांतरण की सूची ग्राम सभा की ओर से प्रकाशित होनी चाहिए।

प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण :

समस्या : सदियों से स्थानीय लोग प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग करते थे और उनके संरक्षण की ज़िम्मेदारी भी उठाते थे। अंग्रेज़ों के ज़माने से नदी, जंगल, खदान आदि पर सरकारों का नियंत्रण शुरू हुआ। तभी से इन प्राकृतिक संसाधनों का जमकर शोषण भी शुरू हुआ और स्थानीय लोगों को विस्थापित किया जाने लगा। आज़ादी के बाद भी यह प्रक्रिया जारी रही। पिछले कुछ वर्षों से स्थानीय लोगों की ज़मीनें छीन कर, उन्हें विस्थापित करके प्राकृतिक संसाधनों के शोषण में भारी तेज़ी आई है। जैसा कि इस पुस्तक में पहले लिखा जा चुका है, हमारी सरकारें तेज़ी के साथ औने पौने दामों में प्राकृतिक संसाधनों को ठेकेदारों और कंपनियों को बेच रहीं हैं।

सुझाव : ग्राम सभा को उसके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले सभी छोटे जल स्त्रोतों, छोटे मोटे खनिजों और छोटे मोटे वन उत्पादों का मालिक बनाया जाए । इसके साथ ही यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सभी प्रभावित ग्राम सभाओं की अनुमति के बिना किसी को भी ज़मीन, जंगल, खदानों और नदियों से जुड़े बड़े संसाधनों के किसी प्रकार से दोहन का अधिकार न दिया जाए। ग्राम सभाएं यह फैसला करें कि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की अनुमति दी जाए या नहीं और अगर दी जाए तो किन शर्तों और नियमों के साथ। अगर इन शर्तों का भविष्य में कभी उल्लंघन होता हुआ नज़र आये तो ग्राम सभा को यह अधिकार होना चाहिए कि वह संबंधित प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए दी गई अनुमति को निरस्त कर दे। ऐसी अवस्था में पर्यावरण एवं समुदाय को हुए नुकसान के लिए संबंधित औद्योगिक इकाई की ओर से क्षतिपूर्ति की जाएगी।

जैसा कि इस पुस्तक में पहले कहा गया है कि सभी प्राकृतिक संसाधन इस देश की धरोहर हैं। उनका राष्ट्र और जनहित में कैसे प्रयोग हो- इस बारे में देश भर की ग्राम सभाओं में चर्चा के बाद राष्ट्रीय स्तर पर नीतियां बनें। भविष्य में अपने इलाके में किसी भी योजना के लिए ग्राम सभाएं इन नीतियों के अनुरूप अनुमति दें।

एस.डी.एम. कार्यालय में भ्रष्टाचार :

समस्या : लोगों को विभिन्न प्रकार के प्रमाण पत्र बनवाने के लिए रिश्वत देनी पड़ती है और तमाम तरह की परेशानियां भी उठानी पड़ती हैं।

सुझाव : जाति, आय, निवास स्थान आदि से संबंधित प्रमाण पत्र पंचायतों के द्वारा जारी किए जाएं। अगर पंचायत सचिव अपने काम में ढिलाई बरते तो ग्राम सभा की अगली बैठक में उससे पूछताछ की जा सकती है।

कर उगाही :

समस्या : हमारे देश में करों की उगाही और उन्हें खर्च करने का बहुत ही अवैज्ञानिक तरीका अपनाया जा रहा है। अधिकतर करों को केन्द्र और राज्य सरकारें इकट्ठा करती हैं और फिर उन्हें विभिन्न योजनाओं के माध्यम से नीचे भेजा जाता है। इस व्यवस्था में दो जगह रिसाव होता है, पहला तो कर उगाही के स्तर पर जब पैसा ऊपर की ओर जाता है और दूसरा खर्च करते समय जब पैसा नीचे की ओर आता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि क्यों नहीं कुछ करों को स्थानीय स्तर पर ही इकट्ठा करके खर्च किया जाता है?

सुझाव : अनुभव यह बताता है कि अगर कर उगाही में लोगों को प्रत्यक्ष रूप से शामिल किया जाए और लोगों को अपने द्वारा दिए गए करों से होने वाले सीधे-सीधे फायदे समझ आ जाएं तो करों की उगाही बहुत बेहतर हो जाती है।

इसलिए जहां तक संभव हो सके विभिन्न प्रकार के करों की उगाही में ग्राम सभा की सेवाएं ली जानी चाहिए। ग्राम सभा चूंकि उन्हीं लोगों की एक प्राथमिक इकाई है जिनके सामूहिक लाभ के लिए कर लिया जाना है, इस कारण कर उगाही करने और उसे खर्च करने के लिए ग्राम सभा से बेहतर और कोई दूसरी सरकारी या गैर सरकारी संस्था नहीं हो सकती। इस कारण हम निम्न बातों का सुझाव देते हैं-

राज्य सरकार को निम्न सूचियां बनानी चाहिए-

(क) वे कर जिन्हें राज्य सरकार द्वारा लगाया और इकट्ठा किया जाएगा।

(ख) वे कर जिन्हें राज्य सरकार द्वारा लगाया जाएगा लेकिन उन्हें इकट्ठा करने की ज़िम्मेदारी पंचायत के निर्दिष्ट स्तर की होगी।

(ग) वे कर जिन्हें निर्दिष्ट उच्च स्तरीय पंचायत द्वारा लगाया जाएगा लेकिन उन्हें इकट्ठा करने की ज़िम्मेदारी पंचायत के निर्दिष्ट निचले स्तर की होगी।

(घ) वे कर जिन्हें लगाने और इकट्ठा करने का काम पंचायत के एक ही निर्दिष्ट स्तर के द्वारा किया जाएगा। ज़्यादा से ज़्यादा कर कोशिश करके इस सूची में डाले जाएं ताकि पंचायत का हर स्तर वित्तीय रूप से स्वायत्त बन सके।

ग्राम सभा की संपत्ति से होने वाली आय एवं वहां से इकट्ठा होने वाले करों को सीधे पंचायत

के खाते में जमा कराया जाना चाहिए। मंडी द्वारा इकट्ठा किये गये शुल्क का भी कुछ हिस्सा ग्राम पंचायतों को सौंपा जाना चाहिए।

कई गांवों को एक पंचायत में मिलाना :

समस्या : दूर दराज के कई गांवों को एक पंचायत में समाहित कर दिया जाता है। इसके चलते लोगों का ग्राम सभा की बैठकों में भाग लेना मुश्किल हो जाता है। फिर सभी गांव एक-दूसरे से काफी अलग होते हैं। यहां तक कि आस-पड़ोस के गांव भी अपने रहन-सहन, जातीय समीकरण, आर्थिक व्यवस्था एवं संसाधनों आदि की दृष्टि से काफी अलग होते हैं। उनकी समस्याएं अलग हैं, इसलिए उनके समाधान भी अलग होंगे। कई मामलों में पाया गया है कि पड़ोसी गांवों में कई पुश्तों से दुश्मनी चली आ रही होती है। इन सब पहलुओं के साथ जब गांवों के बीच की लंबी दूरी और परिवहन का अभाव जैसे कारण जुड़ जाते हैं तो एक पंचायत में आने वाले सभी गांवों की सामूहिक ग्राम सभा में लोगों का आ पाना लगभग असंभव हो जाता है।

सुझाव : प्रत्येक गांव को, भले ही वह छोटा ही क्यों न हो, एक अलग पंचायत घोषित किया जाना चाहिए। यदि आस-पड़ोस के दो या उससे अधिक गांवों की ग्राम सभाएं आपस में मिलकर एक पंचायत/ग्राम सभा होने का फैसला करें तभी उन्हें मिलाकर एक पंचायत का दर्जा दिया जाना चाहिए। आदिवासी इलाकों में पेसा क़ानून के तहत ऐसा ही प्रावधान है। अत: गैर आदिवासी क्षेत्रों में भी ऐसा प्रावधान किया जाना चाहिए।

ब्लॉक एवं ज़िला स्तरीय पंचायतों का गठन :

समस्या : वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत किसी इलाके में आने वाली सभी निचली पंचायतों के अध्यक्ष ऊपरी स्तर की पंचायत के सदस्य होते हैं। इसके अलावा ब्लॉक एवं ज़िला पंचायतों के लिए कुछ सदस्यों का सीधे जनता के द्वारा चुनाव भी होता है। अनुभव बताता है कि इन चुने हुए सदस्यों की वजह से ब्लॉक अथवा ज़िला स्तर की पंचायतों की कार्यप्रणाली में किसी भी तरह का सुधार हुआ हो- ऐसा कहीं दिखाई नहीं देता। उल्टे इन्होंने भ्रष्टाचार को ही बढ़ाया है। जब कभी मध्य स्तरीय या ज़िला स्तरीय पंचायत अध्यक्षों के ख़िलाफ अविश्वास प्रस्ताव आता है, तब अधिकतर सदस्य अपने मतों की बोली लगाने में व्यस्त हो जाते हैं। कई मामलों में तो अध्यक्षों को अपनी कुर्सी बचाए रखने के लिए इन सदस्यों को नियमित रूप से पैसा देना पड़ता है। इसके अलावा ये सदस्य अपने चुनावों के दौरान बेतहाशा पैसा खर्च करते हैं। चूंकि उनका चुनाव क्षेत्र काफी बड़ा होता है, इसलिए वे ग्राम पंचायतों के मुखिया या प्रधान की तुलना में कई गुना अधिक पैसा खर्च करते हैं। स्पष्ट है कि चुनावों में खर्च सारा पैसा वे अपनी जीत के बाद ब्याज समेत वसूल करने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

सुझाव : माध्यमिक एवं ज़िला स्तरीय पंचायतों में सीधे निर्वाचित सदस्यों की व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए। केवल निचली पंचायतों के प्रतिनिधियों को ही ऊपरी स्तर की पंचायतों में

सदस्य बनाया जाना चाहिए। इस तरह ग्राम सभा उच्च स्तरीय पंचायतों को अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से सीधे नियंत्रित करने या उससे सवाल-जवाब करने में भी सक्षम हो पाएगी। तो एक ब्लॉक के सभी सरपंचों को ब्लॉक पंचायत का सदस्य बनाया जाए। वे लोग अपने बीच में से किसी एक को ब्लॉक अध्यक्ष के रूप में चुन लेंगे। इसी प्रकार सभी ब्लॉक अध्यक्षों को ज़िला पंचायत का सदस्य बनाया जाना चाहिए और वे फिर अपने में से किसी एक को ही ज़िला पंचायत अध्यक्ष के रूप में चुन लें। ग्राम पंचायत का सरपंच ग्राम सभा और ब्लॉक पंचायत के बीच एक कड़ी का काम करे। ग्राम सभा के फैसलों से वह ब्लॉक पंचायत को अवगत कराये और ब्लॉक पंचायत के फैसलों से वह ग्राम सभा को परिचित कराये। इस तरह सरपंच के माध्यम से ग्राम सभा ब्लॉक स्तर पर हो रही गतिविधियों को नियंत्रित कर पाएगी। इसी व्यवस्था को आगे बढ़ाते हुए ब्लॉक पंचायतों के अध्यक्ष ब्लॉक पंचायत और ज़िला पंचायत के बीच एक कड़ी के रूप में काम करेंगे।

दस्तावेज़ों की पारदर्शिता :

समस्या : सूचना के अधिकार के बावजूद सभी स्तरों की पंचायतों की कार्यप्रणाली एवं उनके फैसलों के बारे में जानकारी हासिल करना मुश्किल होता है। कई इलाकों में जिन लोगों ने पंचायतों के काम-काज के संबंध में सरपंचों और अधिकारियों से जानकारी मांगी है, उन्हें प्रताड़ित करने के तमाम मामले सामने आ रहे हैं। पुलिस और मुखिया की मिलीभगत से उन्हें झूठे मामलों में फंसा देना आम बात हो गयी है। कई जगह तो उन पर जानलेवा हमला भी किया गया है।

सुझाव : पंचायत के सभी स्तरों द्वारा किये जा रहे काम-काज में पारदर्शिता लाने के लिए पंचायतों के दस्तावेज़ों को पारदर्शी बनाया जाना चाहिए। ग्राम, ब्लॉक और ज़िला पंचायतों के सभी दस्तावेज़ों को सार्वजनिक किया जाना चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार बिना कोई आवेदन दिए इन दस्तावेज़ों का निरीक्षण कर सके। इसके लिए प्रत्येक सप्ताह में काम-काज के दो दिनों के दौरान निश्चित समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति दस्तावेज़ों के किसी हिस्से की प्रतिलिपि लेना चाहे तो उससे क्षेत्र में प्रचलित फोटो कॉपी का शुल्क लेकर एक सप्ताह के अंदर मांगी गई प्रतिलिपी उपलब्ध करायी जानी चाहिए। किसी प्रकार का उल्लंघन होने पर ग्राम सभा को यह अधिकार होना चाहिए कि वह अपने दोषी कर्मचारियों को दण्डित कर सके।

लोकपाल की व्यवस्था हो :

समस्या : आज यदि पंचायती राज क़ानून के प्रावधानों का उल्लंघन हो रहा हो, या ग्राम सभा के काम-काज को ठीक ढंग से न चलने दिया जा रहा हो, या समाज के किसी वर्ग विशेष को ग्राम सभा की बैठक में शामिल होने से रोका जा रहा हो, या फिर ग्राम सभा की कार्यवाही का लिखित विवरण (मिनिट्स) ठीक ढंग से न तैयार हो रहा हो, ऐसी स्थितियों से निपटने का कोई प्रभावी तरीका वर्तमान क़ानून में नहीं है। ऐसे मामलों में ज़िलाधिकारी को कार्रवाई करनी होती है जो

अक्सर स्थानीय नेताओं के दबाव में आकर निष्पक्ष कार्रवाई नहीं करते।

इस बात की भी आशंका व्यक्त की जाती है कि कई इलाकों में उच्च जाति के लोग दलितों को ग्राम सभा की बैठकों में बैठने से ही मना कर देंगे। यदि उन्हें अनुमति दे भी दी गयी तो उन्हें बोलने नहीं दिया जाएगा और अगर बोलने दिया गया तो उनकी मांगों को बैठक के लिखित विवरण अर्थात मिनिट्स में शामिल ही नहीं किया जाएगा।

सुझाव : इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि इस प्रकार की शिकायतों को सुनने और उन पर समयबद्ध कार्रवाई करने के लिए लोकपाल का गठन किया जाना चाहिए। केरल में ऐसी संस्था अस्तित्व में भी है, जिसके अच्छे परिणाम निकले हैं।

हमारा सुझाव है कि राज्य स्तर पर लोकपाल की नियुक्ति होनी चाहिए। लोकपाल का काम होगा कि पंचायती क़ानून के उल्लंघन से जुड़ी शिकायतों और संबंधित विवादों का निपटारा करने के साथ-साथ इसके विभिन्न प्रावधानों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए वो कदम उठाएं।

इसके चयन और नियुक्ति की प्रक्रिया पूरी तरह पारदर्शी और जन सहभागिता पर आधारित होनी चाहिए। प्रभावी रूप से और समयबद्ध होकर काम करने के लिए इसे सभी आवश्यक अधिकार और संसाधन दिए जाने चाहिए।

यदि कोई यह शिकायत करे कि उसके गांव में ग्राम सभा की बैठक नियमित रूप से नहीं हो रही है, या कुछ लोगों को उनमें बैठने या बोलने नहीं दिया जा रहा या उनकी बातों को मिनिट्स में नहीं लिखा जा रहा तो ऐसी स्थिति में लोकपाल को चाहिए कि वह इस शिकायत की जांच करे और यदि शिकायत सच्ची पायी जाए तो वह या तो स्वयं या अपने किसी प्रतिनिधि की उपस्थिति में उस गांव में ग्राम सभा की बैठक का आयोजन करे और साथ ही यह भी सुनिश्चित करे कि ऐसी बैठकें आगे भी होती रहें।

राज्य सरकार के हस्तक्षेप पर रोक लगे :

समस्या : वर्तमान पंचायती राज क़ानूनों के अंतर्गत राज्य सरकारें समय-समय पर पंचायतों को कोई भी दिशा निर्देश दे सकती हैं। इसके चलते पंचायतें राज्य सरकार के एक निकम्मे विभाग के रूप में तब्दील हो गयी हैं। लोगों से परामर्श करने या उनका दुख-सुख सुनने की बजाए सरपंच या ग्राम प्रधान राज्य सरकार के निर्देशों का पालन करने में ही व्यस्त रहते हैं। ग्राम सभाएं किस-किस तारीख को होंगी, उनका एजेंडा क्या होगा, विभिन्न समितियों का गठन कब होगा तथा उनकी संरचना और काम-काज की प्रक्रिया क्या होगी, ऐसे तमाम फैसले गांव में नहीं बल्कि राज्य सरकार के सचिवालय में लिए जाते हैं। राज्य की कोशिश होती है कि लोगों के जीवन से जुड़े छोटे से छोटे फैसले भी वह खुद ही करे। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग अपना उद्यम भूल गए और साथ ही पंचायतों एवं ग्राम सभाओं की आज़ादी भी खत्म हो गयी।

सुझाव : पंचायतों को निर्देश देने का अधिकार राज्य सरकार से वापस ले लिया जाना चाहिए। पंचायतों को प्रशासन का तीसरा स्वतंत्र ढांचा माना जाना चाहिए। बहुत हुआ तो राज्य सरकारों की ओर से पंचायतों को कुछ सुझाव दिया जा सकता है, लेकिन पंचायतों को बार-बार आदेश देकर उनके दैनिक काम-काज में हस्तक्षेप की छूट राज्य सरकारों को कदापि नहीं होनी चाहिए।

लाभार्थी सभाओं का गठन हो :

समस्या : मान लीजिए 100 लोगों के गांव में दस लोग ही राशन लेते हैं। यदि सभी 100 लोगों से राशन व्यवस्था के बारे में पूछा जाए तो बाकी 90 लोग ग़लत बोल सकते हैं।

सुझाव : इस समस्या को कुछ हद तक लाभार्थी सभाओं की अवधारणा से सुलझाया जा सकता है। लाभार्थी सभाओं में उन लोगों को शामिल किया जाएगा जो ग्राम सभा के किसी विशेष निर्णय से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हों। उपर्युक्त उदाहरण में दस राशन लेने वाले लोग मिलकर लाभार्थी सभा बनाएंगे। इसी तरह मान लीजिए कि ग्राम सभा कोई सड़क बनाने का निर्णय लेती है, तो उस सड़क के दोनों ओर रहने वाले लोग लाभार्थी सभा के सदस्य माने जाएंगे। सड़क ठीक ढंग से बनायी गयी है या नहीं, इसका फैसला संबंधित लाभार्थी सभा द्वारा किया जाएगा। लाभार्थी सभाओं द्वारा लिए गए निर्णय को ग्राम सभा का ही निर्णय माना जाएगा।

❖❖❖

नगर स्वराज भी ज़रूरी

किसी भी गांव में रहने वाले लोगों की आम सभा को ग्राम सभा कहते हैं। ऐसा हमारे संविधान में लिखा है। यद्यपि संविधान में ग्राम सभा का ज़िक्र तो है फिर भी ग्राम सभाओं को कोई अधिकार नहीं दिये गये हैं। स्वराज के तहत हमारा मानना है कि सरकारी फ़ंड, सरकारी कर्मचारी, सरकारी नीतियां, क़ानून बनाने की प्रक्रिया और प्राकृतिक संसाधनों पर ग्राम सभाओं के ज़रिए सीधे जनता का नियंत्रण बने। दुर्भाग्यवश शहरों में रहने वाले लोगों की आम सभा को न तो संवैधानिक मान्यता है और न ही किसी क़ानून में मान्यता है। इसके लिए अलग से नया क़ानून बनाना पड़ेगा।

दिल्ली के प्रयोग :

यह सच है कि मोहल्ला सभाओं को अभी क़ानूनी मान्यता नहीं मिली है। लेकिन कई स्थानों पर नागरिकों ने अपनी पहल पर इनकी शुरुआत कर दी है। इनमें दिल्ली का प्रयोग उल्लेखनीय है। पूर्वी दिल्ली के कुछ इलाकों में एक लंबे समय से स्वराज अभियान की पहल पर मोहल्ला सभाएं आयोजित की जा रही हैं। स्थानीय मामलों में सरकारी निर्णय वहां की जनता ले रही है। नेता और अफ़सर उन्हें लागू करवाने में जुटे हैं। यह अद्‌भुत कार्य दिल्ली नगर निगम के त्रिलोकपुरी और सुंदरनगरी वार्ड में हो रहा है। यहां प्रत्येक वार्ड को 10 मोहल्लों में बांट दिया गया है। प्रत्येक मोहल्ला सभा महीने या दो महीने में एक बार बैठती है।

मोहल्ला सभा की बैठकों में पार्षद और नगर निगम के अन्य स्थानीय अधिकारी उपस्थित रहते हैं। निगम के पैसे का इस्तेमाल मोहल्ले में कहां और कैसे करना है, इसका फैसला लोग मिलकर मोहल्ला सभा में करते हैं। इसके पहले ये सारे निर्णय कुछ अफ़सर और नेता बंद कमरों में बैठ कर लिया करते थे। लेकिन आज स्थिति यह है कि मोहल्ला सभा का कोई भी नागरिक बैठक में पहुंचकर पानी-बिजली-सड़क जैसी किसी भी समस्या को उठा सकता है। उसकी मांग को बैठक में उपस्थित पार्षद और अधिकारी नोट करते हैं तथा उसके लिए फ़ंड आवंटित किया जाता है। यदि कामों की फेहरिस्त लंबी हो गयी और उसे पूरा करने लायक फ़ंड न हुआ तो मौके पर ही वोटिंग कराके तय किया जाता है कि कामों को किस प्राथमिकता के आधार पर पूरा किया जाए।

त्रिलोकपुरी और सुंदरनगरी के पार्षदों ने घोषणा कर दी है कि उनके क्षेत्र में हुए किसी काम के लिए ठेकेदार को तभी भुगतान किया जाएगा, जब मोहल्ला सभा किए गए काम को लेकर अपनी संतुष्टि ज़ाहिर कर दे। इस निर्णय से इलाके में होने वाले कामों की गुणवत्ता में बहुत सुधार हुआ है।

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अंतर्गत वृद्धा पेंशन, विकलांगता पेंशन और विधवा पेंशन जैसे कई लाभों को प्राप्त करने वाले नागरिकों की सूची इन मोहल्ला सभाओं में खुले आम बनायी जाती है। लोग पूरी पारदर्शिता के साथ यह चर्चा करते हैं कि उनमें से सबसे गरीब कौन है और किसे इन योजनाओं का लाभ मिलना चाहिए। पहले ये लाभ पार्षद के नज़दीकी या परिचित लोगों को ही मिल पाते थे।

दिल्ली के उपराज्यपाल ने अपने वार्ड में मोहल्ला सभा कराने वाले पार्षदों को बधाई दी है। उन्होंने इलाके के पुलिस अधिकारियों को भी मोहल्ला सभा में उपस्थित रहने का आदेश दिया है। साथ ही उन्होंने नगर निगम आयुक्त से कहा है कि ऐसी सभाएं दिल्ली के अन्य इलाकों में करवाने का प्रयास हो।

केन्द्र सरकार की पहल :

मोहल्ला सभाओं को क़ानूनी मान्यता और अधिकार देने की मांग अब चारों ओर उठने लगी है। गत वर्ष केन्द्र सरकार की ओर से सभी राज्य सरकारों को 'नगर राज बिल' का एक प्रारूप भेजा गया था और यह अनुरोध किया गया था कि वे अपने विवेकानुसार आवश्यक संशोधन के बाद इसे अपनी विधान सभाओं में पारित करवाएं। केन्द्र सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम एक बड़ी घटना थी। ऐसा पहली बार हुआ था कि शहरों में मोहल्ला सभा के नाम से नागरिकों की एक नई इकाई को मान्यता दी गयी। लेकिन दुख की बात है कि केन्द्र सरकार के प्रारूप में मोहल्ला सभाओं को कोई वास्तविक अधिकार नहीं दिया गया।

केन्द्र सरकार द्वारा भेजे गए वर्तमान नगर राज विधेयक के प्रारूप से अपनी असहमति प्रकट करते हुए देश के कुछ गणमान्य नागरिक जैसे उच्चतम न्यायालय के वकील प्रशांत भूषण, सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हज़ारे, मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्य सचिव एस.सी. बहर आदि ने मिलकर नगर राज विधेयक का एक नया प्रारूप तैयार किया है। आइए जानते हैं, नगर राज बिल के उन मुख्य प्रावधानों को जिन्हें देश के प्रमुख नागरिक क़ानून का रूप दिए जाने की मांग कर रहे हैं।

प्रस्तावित क़ानून के मुख्य प्रावधान :

मोहल्ला सभाओं का गठन :

(क) शहर के किसी एक निश्चित इलाके में रहने वाले तीन हज़ार लोगों (मतदाताओं) को मिलाकर एक मोहल्ला सभा का गठन किया जाना चाहिए। यदि शहर के किसी वार्ड की जनसंख्या

तीन हज़ार से अधिक हो तो प्रत्येक तीन हज़ार की जनसंख्या पर एक मोहल्ला सभा का गठन किया जाए। संबंधित मोहल्ला सभा के भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले सभी मतदाताओं को मोहल्ला सभा का सदस्य माना जाना चाहिए।

(ख) प्रत्येक मोहल्ला सभा के एक प्रतिनिधि को राज्य निर्वाचन आयोग की मदद से चुना जाना चाहिए।

(ग) एक वार्ड में स्थित सभी मोहल्ला सभाओं के प्रतिनिधियों को मिलाकर वार्ड कमेटी बनायी जाए। इस वार्ड कमेटी की अध्यक्षता संबंधित वार्ड के पार्षद/सभासद द्वारा की जाए।

(घ) मोहल्ले से जुड़े सभी मामलों का प्रबंधन मोहल्ला सभा द्वारा किया जाए। सभी मोहल्ला सभाओं से संवाद और सहमति के माध्यम से वार्ड कमेटी वार्ड से जुड़े सभी मामलों का प्रबंधन करे।

(ङ) मोहल्ला सभा की बैठकों की अध्यक्षता मोहल्ला सभा के प्रतिनिधि द्वारा हो। उसे मोहल्ला सभा और वार्ड कमेटी के बीच संवाद का माध्यम बनना चाहिए। मोहल्ला सभा के सभी निर्णयों को मानना उसके लिए अनिवार्य होगा। वह मोहल्ला सभा की अनदेखी करके कोई निर्णय नहीं ले सकेगा।

(च) मोहल्ला सभा के सभी निर्णय उसकी हर महीने होने वाली खुली बैठकों में लिए जाने चाहिए। यदि कोई निर्णय खुली बैठक की बजाए कहीं और लिया गया है तो उसकी मंज़ूरी खुली बैठक में ली जानी चाहिए।

आर्थिक नियंत्रण :

(क) वार्ड कमेटी के पास राजस्व के स्वतंत्र स्त्रोत होने चाहिए। अपनी मोहल्ला सभाओं से विचार विमर्श करके वार्ड कमेटियां संबंधित वार्ड में कुछ मामलों में कर लगाने और इकट्ठा करने के लिए अधिकृत होनी चाहिए।

(ख) स्थानीय स्तर पर इकट्ठा किए जाने वाले करों के अतिरिक्त वार्ड कमेटियों को नगर पालिका, राज्य और केन्द्र सरकार की ओर से भी विकास कार्यों के लिए मुक्त फ़ंड दिया जाना चाहिए।

(ग) किसी मोहल्ले में कौन सा कार्य और किस जगह किया जाना है, इसका निर्णय संबंधित मोहल्ला सभा द्वारा किया जाना चाहिए।

(घ) मोहल्ले में काम करने वाले ठेकेदार को भुगतान तभी किया जाए, जब मोहल्ला सभा की ओर से काम के बारे में संतुष्टि प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया हो।

कर्मचारियों पर नियंत्रण :

(क) मोहल्ला सभाओं के सभी निर्णय सामूहिक रूप से मोहल्ला सभाओं में ही लिए जाने चाहिए। मोहल्ला सभा के निर्वाचित प्रतिनिधि और स्थानीय अधिकारियों की ज़िम्मेदारी केवल इन निर्णयों को लागू करने की होनी चाहिए।

(ख) यदि मोहल्ला सभा के प्रतिनिधि या वार्ड सभासद द्वारा मोहल्ला सभा के निर्देशों का पालन नहीं किया जाता तो ऐसी स्थिति में मोहल्ला सभा के पास उन्हें वापस बुलाने का अधिकार होना चाहिए।

(ग) मोहल्ला सभा को अपने इलाके में कार्यरत कनिष्ठ अभियंता, प्रधानाध्यापक, राशन की दुकान के संचालक, स्वास्थ्य पर्यवेक्षक, माली, अस्पताल के मेडिकल सुपरिन्टेडेन्ट आदि के स्तर के स्थानीय अधिकारियों को अपनी बैठकों में उपस्थित रहने का निर्देश देने का अधिकार होना चाहिए।

(घ) यदि स्थानीय सरकारी कर्मचारी जैसे अध्यापक, माली, सफाईकर्मी, स्वास्थ्यकर्मी, कनिष्ठ अभियंता आदि मोहल्ला सभा के निर्देशों का पालन नहीं करते या अपने काम में लापरवाही बरतते हैं, तो ऐसी स्थिति में मोहल्ला सभा के पास दोषी कर्मचारियों का वेतन रोकने या उन पर जुर्माना लगाने का अधिकार होना चाहिए। कर्मचारियों को दंडित करने के लिए किसी अन्य एजेंसी से पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

(ङ) यदि मोहल्ले में चल रही राशन की दुकान से राशन का उचित ढंग से वितरण नहीं किया जा रहा हो तो मोहल्ला सभा संबंधित राशन की दुकान का लाइसेंस रद्द कर सके। मोहल्ला सभा राशन की दुकान चलाने का लाइसेंस किसी नए व्यक्ति को देने के लिए भी अधिकृत होनी चाहिए।

उत्तरदायित्व :

(क) मोहल्ला सभाओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके मोहल्ले में कोई भी व्यक्ति बिना घर के न हो, कोई भूखा न सोए, कोई बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे और सभी को पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं मिलें।

(ख) संबंधित वार्ड में वार्ड कमेटियों के अधिकार और उत्तरदायित्व मोहल्ला सभाओं की तरह ही होने चाहिए। तथापि वार्ड कमेटी के सभी बड़े फैसलों को लागू करने के पहले संबंधित मोहल्ला सभाओं की मंज़ूरी आवश्यक होनी चाहिए।

(ग) मोहल्ले में स्थित झुग्गी झोपड़ियों को तब तक नहीं हटाया जाए, जब तक सरकारी नीतियों के अनुरूप उचित पुनर्वास न कर दिया जाए। पुनर्वास से संबंधित संतुष्टि प्रमाणपत्र संबंधित मोहल्ला सभाओं द्वारा जारी किया जाना चाहिए।

(घ) दिल्ली जैसे महानगरों में स्थित गांवों को उनकी अपनी ज़मीन पर पूरा अधिकार मिलना चाहिए।

नगरपालिका/नगरनिगम पर नियंत्रण :

कोई भी मोहल्ला सभा दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके संबंधित नगरनिगम/नगरपालिका को किसी भी मुद्दे पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए कह सकती है। ऐसा प्रस्ताव मिलने पर संबंधित नगर निगम / नगर पालिका के लिए निर्देशित मुद्दे पर विचार करना और निर्णय लेना ज़रूरी होना चाहिए।

❖❖❖

अपनी ग्राम सभा या अपनी मोहल्ला सभा से जुड़िए, बातचीत करिए

जब भी ग्राम सभाओं और मोहल्ला सभाओं के ज़रिए लोगों को सीधे सत्ता देने की बात की जाती है, तो सरकारें कहती हैं कि लोग तो लड़ेंगे। लोग तो विभाजित हैं- धर्म के नाम पर विभाजित हैं, जाति के नाम पर विभाजित हैं। इसीलिए लोगों को सत्ता नहीं दी जा सकती। इतिहास गवाह है कि जब जब आज़ादी की बात की गई, तब तब सत्ताधारियों ने जनता के बीच के विभाजनों को कारण बता कर जनता को सत्ता देने से मना कर दिया। अंग्रेज़ों ने भी जनता के बीच के विभाजनों का सहारा लिया। अक्सर सत्ताधारी लोग जनता के बीच के विभाजनों को पाटने की बजाय और गहरा करते हैं और फिर इन्हीं विभाजनों को कारण बताकर जनता को सत्ता देने से इंकार करते हैं। हमारे नेता, पार्टियां और अफ़सर हमारे देश में धर्म और जाति की राजनीति खेलते हैं और हमारे बीच में विभाजनों को और गहरा करते हैं। इसीलिए पहला काम तो यह करने की ज़रूरत है कि हम सीधे-सीधे नेताओं को कह दें - ''हम अपने विभाजनों को खुद दूर कर लेंगे। लेकिन अब हमें सत्ता वापिस चाहिए। जो सत्ता हमने आपको 26 जनवरी 1950 को दी थी, आपने उसका दुरुपयोग किया, हम आपसे सत्ता वापिस लेते हैं''। दूसरा काम हमें यह करना होगा कि अपने समाज के विभाजनों को दूर करने के लिए अभियान चलाने होगें। इसीलिए ज़रूरी है कि हर गांव में ग्राम सभाऐं शुरू हों।

हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि कहीं ग्राम सभाएं सरकारी योजनाओं की बंदरबांट करने वाली मीटिंग न बन जाएं। डा. बीडी शर्मा का कहना है कि ग्राम सभा 'आप कैसे हो' से शुरू होनी चाहिए। पहले कुछ देर लोग एक दूसरे का हाल पूछें। ग्राम सभा में लोग अपने घर की समस्याएं रखने को भी स्वतंत्र होने चाहिए। ग्राम सभा लोगों की निजी, पारिवारिक, सामाजिक और गांव से संबंधित सभी समस्याओं की चर्चा करने का एक मंच बने। लोग अपनी समस्याएं बताएं और वहीं समाधान पर भी चर्चा हो। लोग आपस में ही गांव के स्तर पर ही अधिकतर समस्याओं का समाधान खोजने की कोशिश करेंगे। जैसे, मान लीजिए, किसी के घर में कोई बीमार है तो ग्राम सभा में बैठकर लोग चर्चा करेंगे कि उसकी मदद कैसे करें। इससे लोग आपस में जुड़ेंगे। ज़्यादा से ज़्यादा

लोग ग्राम सभाओं में आने लगेंगे।

यदि आपके गांव का सरपंच हर महीने ग्राम सभाएं बुलाने को तैयार होता है तो अच्छी बात है। अगर वह नहीं बुलाता है तो कोई बात नहीं। आप खुद अपनी ओर से हर महीने एक निश्चित स्थान पर पूरे गांव की सभा बुलानी आरंभ कीजिए। पहले कुछ लोग ही आएंगे। प्रयास करके गांव के दलित परिवारों को ज़रूर बुलाएं। यही ग्राम सभा है। इसमें हर व्यक्ति अपनी हर समस्या रखने को स्वतंत्र हो। समस्याओं के समाधान पर भी चर्चा हो। आपस में मिलकर लोग समाधान ढूंढने की कोशिश करेंगे। लोगों को अपनी समस्याएं रखने का मौका मिलेगा और इनमें से कुछ समस्याओं का भी यदि निवारण होगा- इसी से महीना दर महीना लोगों की संख्या इन सभाओं में बढ़ेगी।

हर सभा में प्रधान को निमंत्रित किया जाए। यदि दो तीन सभाओं के बाद भी वो नहीं आता तो हर माह सूचना अधिकार के तहत पंचायत द्वारा पिछले माह में किये गये काम-काज के ब्यौरे की जानकारी प्राप्त करके जनता के समक्ष रखी जाए। हर गांव में लोगों की खुली बैठकों का दौर चालू हो- यह अति आवश्यक है।

जिस तरह गांवों में ग्राम सभा की जानी चाहिए उसी प्रकार शहरों में मोहल्ला सभाओं का आयोजन होना चाहिए। आप अपने आसपास के लोगों को इकट्ठा करिए। पहली ज़रूरत है कि लोग एक-दूसरे से जुड़ें। सबके बीच एक सामाजिक रिश्ता स्थापित हो। धीरे-धीरे स्थानीय एवं राष्ट्रीय मुद्दों पर भी चर्चा होगी। फिर सबसे बातचीत करके स्थानीय वार्ड पार्षद को बुलाइए। उसे मोहल्ला सभा को लेकर चल रहे देश भर में प्रयोगों के बारे में बताइए। वह तैयार हो जाए तो उसके साथ मिलकर नियमित रूप से मोहल्ला सभाओं का आयोजन शुरू करिए। वह साथ नहीं आता तो भी एक जगह मिलने का सिलसिला जारी रखें। इस संबंध में स्वराज अभियान के अंतर्गत चल रहे विभिन्न प्रयोगों से आप बहुत कुछ सीख सकते हैं, जान सकते हैं। लोगों के बीच के विभाजन इसी तरह दूर होगें। जब तक नेताओं और पार्टियों के हाथों में सत्ता है, वे विभाजन को और गहरा करेंगे। जिस दिन गांव में ग्राम सभाऐं और शहरों में मोहल्ला सभाऐं होनी शुरू हो गई, विभाजन दूर करने की यात्रा शुरू हो जायेगी।

ग्राम सभा और मोहल्ला सभा के आयोजन और उसकी कार्यवाही से जुड़े अपने अनुभवों के बारे में हमें फोन करके, ईमेल भेज कर या पत्र लिखकर ज़रूर बताएं। आपके अनुभवों को जानकर हमारी समझ भी बढ़ेगी। देश की तस्वीर यदि बदलनी है तो हम सभी को मिलजुलकर ही काम करना होगा।

❖❖❖